आंधी शरद की

मूल कश्मीरी लेखक :
डॉ० रूपकृष्ण भट्ट

हिन्दी भाषांतर :
प्यारे हताश

आदरणीय डॉ० सोम नाथ कौल जी के लिए सादर।

— प्यारे हताश
30 अक्तूबर, 04

आंधी सरद की

मूल कश्मीरी लेखक :

डॉ० रूपकृष्ण भट्ट

हिन्दी भाषांतर :

प्यारे हताश

"AANDHI SHARAD KI"

A Collection of Kashmiri short stories
by Dr. Roop Krishen Bhat
Hindi Translation by Piarey Hatash

पुस्तक का नाम	:	आंधी शरद की (कहानी संग्रह)
मूल कश्मीरी लेखक	:	डॉ. रूपकृष्ण भट्ट
हिन्दी भाषांतर	:	प्यारे हताश
कम्प्यूटर डी.टी.पी	:	रिंकू कौल (2595136)
प्रकाशन वर्ष	:	2004 ई॰
प्रतियां	:	500
मूल्य	:	250 रुपये
कुल कहानियां	:	19 (उन्नीस)
कुल पृष्ठ	:	118

पुस्तक मिलने का पता :-

1. ग्रीनविव अपार्टमेन्टस, 33, सेक्टर 9, रोहिणी, दिल्ली-85
2. 148, डीलेक्स अपार्टमेन्टस, वसुन्धरा एन्कलेव, दिल्ली-96
3. गुलशन पब्लिशर्स, रिज़िडन्सी रोड, श्रीनगर-190001
4. 'सतीसर', दूरशर्न गेटलेन, जानीपुर, जम्मू-180007
5. किताब घर, लाल चौक, श्रीनगर।
6. किताब घर, कनाल रोड, जम्मू।

नीरज प्रकाशन, जानीपुर, जम्मू

कहानियों की सूची

कहानीकार के बारे में

डॉ. रूपकृष्ण भट्ट एक प्रतिष्ठित विद्वान, भाषा-वैज्ञानिक, कश्मीरी कहानीकार तथा एक कुशल प्रशासक हैं। इन्होंने कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय से भाषा-विज्ञान में एम. ए. एवं पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की है। पंजाबी विश्वविद्यालय से रूसी भाषा में डिपलोमा लिया है। वे भारत सरकार के मानव संसाधन मंत्रालय के विभिन्न विभागों में कार्यरत रहे हैं। डॉ. भट्ट ने कश्मीरी भाषा, साहित्य तथा संस्कृति पर कई पुस्तकें लिखी हैं और सौ से ज़्यादा प्रपत्र लिखे हैं। वे दूरदर्शन तथा आकाशवाणी के लिए भी लिखते हैं। इन्होंनें शैक्षिक कार्यक्रमों में भाग लेने के लिए भारत सरकार की तरफ से रूस, इंग्लैंड, थाईलैंड, अरब इमारात आदि देशों की यात्रा की है। इस समय वे 'नेशनल कौंसल फार दि प्रमोशन ऑफ़ उर्दू लैंग्वेज' में मुख्य प्रकाशन अधिकारी के पद पर आसीन हैं।

भाषा और साहित्य पर डॉ.भट्ट की नज़र बहुत गहरी है और कश्मीर इतिहास, संस्कृति और प्राचीन एवं मध्य कालीन साहित्य की भी सम्यक् जानकारी है। डॉ.भट्ट कई भाषाओं में लिखेते हैं और कश्मीरी भाषा पर उन्हें विशेष 'अधिकार है। एक सहृदय साहित्य लेखक और कहानीकार के रूप में उन का योगदान अद्वितीय है।

अनुवादक के बारे में

प्यारे हताश का न केवल कश्मीरी भाषा पर अपितु उर्दू तथा हिंदी पर भी अच्छा अधिकार है। उर्दू एवं हिंदी में भी उन्होंने स्वतंत्र कविताएँ लिखी हैं।

'हताश' करुणा, प्रेम, सद्भावना और बन्धुत्व के कवि हैं। आज के दूषित घृणापूर्ण वातावरण में वे सहज बंधुत्व की आस दोहराते हैं और दोहराते जाते हैं। उनका प्रेम मनुष्य धर्म एवं मानव कर्म के लिए है। उनकी रचनाओं में करुणा और बंधुत्व की कमी नहीं है। उनका व्यक्तिगत प्रेम चाहे-अनचाहे सर्वसाधारण के लिए समर्पित है।

अनुवाद के क्षेत्र में उनका योगदान प्रशंसनीय है। कई भाषाओं की चर्चित रचनाओं के अनुवाद या तो हिंदी भाषा में किये हैं अथवा कश्मीरी में। इस प्रकार 'हताश' परस्पर जोड़ने की कर्म-साधना में व्यस्त दिखाई दे रहें हैं।

'हताश' अकृत्रिम जीवन जीने में विश्वास रखते हैं और निरन्तर साधना रत रह कर जीवन के अनमोल क्षणों को अमरत्व प्रदान कर रहे हैं। सहज स्वाभाविक भावभिव्यक्ति, सांस्कृतिक गरिमा, इतिहास बोध एवं जीवन जीने की बलवती इच्छा प्यारे हताश को सहृदय पाठक के क़रीब ला खड़ी कर देती है।

प्यारे हताश अपना कर्तव्य कर्म निबाह कर आत्मसन्तोष की प्राप्ति हेतु प्रयत्नरत दिखाई दे रहे हैं। कई भाषाओं के साहित्य की सम्यक् जानकारी उन्हें जनमानस के यथार्थ का परिचय बोध कराती है और व्यापक राष्ट्रीय स्तर पर सोचने, समझने और अभिव्यक्त करने की प्रेरणा प्रदान करती है।

प्यारे हताश को जीवन जीने में विश्वास है, जीवन खोने में नहीं। वे बीते हुए कल की मधुर स्मृतियों को शक्ति स्त्रोत के रूप में ग्रहण कर वर्तमान से जूझ रहे हैं ताकि आने वाला कल सूर्योदय की लालिमा से नहला उठे क्योंकि 'हताश' को कल पर विश्वास है अटल और अटूट।

विमर्श

कहानीकार डॉ. रूपकृष्ण भट्ट का 'हरदु वाव' शीर्षक से ग्यारह कश्मीरी कहानियों का एक संग्रह सन् 2001 ई. में 'कश्मीर कल्चरल ट्रस्ट' दिल्ली की ओर से प्रकाशित हुआ। कहानियाँ प्रमुख रूप से विस्थापन की दुःखद अश्रुसिक्त भावानुभूतियों से जुड़ी हैं। इन कहानियों में मूख इतिहास मुखर हो उठा है।

श्री प्यारे 'हताश' ने 'हरदु वाव' में संगृहीत ग्यारह कहानियों का भाषानुवाद हिन्दी में किया और इन रचनाओं के साथ रूपकृष्ण की पाँच अन्य कहानियाँ – 'साहब', 'मोबाइल नम्बर', 'शफ़ा', 'इंसान' तथा मक़सद – अनुवाद करके जोड़ दी। इस प्रकार कहानीकार की सोलह कश्मीरी कहानियों का हिन्दी भाषानुवाद 'आंधी शरद की' शीर्षक से प्रकाशित हो रहा है।

◆◆◆

इन कहानियों को हिन्दी में लाने की बहुत ज़रूरत थी। हिन्दी भाषा–भाषी कश्मीरी कहानी के विकासोन्मुख स्वरूप से परिचित हो जायें – इस दृष्टि से अनूदित रचनाओं का अपना विशेष महत्त्व है। इतिहास के दुर्घटनाग्रस्त होने के परिणाम स्वरूप कश्मीरी कहानीकार की सोंच पर क्या प्रभाव पड़ा और किस प्रकार अनुभूत सत्य कहानी का विषय बन गया – इस की सम्यक् जानकारी इन कहानियों के द्वारा प्राप्त होती है। स्वयं कहानीकार रूपकृष्ण भट्ट भी इस भीषण स्थिति का शिकार होकर घर से बेघर हुए हैं। यह उन का अनुभूत सत्य है। इस विष को

पीने और पचाने के लिये वे स्वयं विवश हुए हैं। उन की सर्जनात्मक प्रतिभा का इस अविश्वसनीय यथार्थ से प्रभावित हो उठना स्वाभाविक था। वस्तुत: साहित्यकार अपने युग की पहचान कराता है। वह न केवल अपने रचना संसार के प्रति ईमानदार होता है अपितु मानवीय रिश्तों के बदलते मूल्यों के प्रति भी सचेत रहता है। वह जिस स्थिति में जीने और मरने के लिये विवश होता है उस का प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष प्रभाव उस की सृजन साधना पर अवश्य पड़ता है। आज का संवेदनशील साहित्यकार इतिहास की सचाई को बिना 'मेकअप' के सर्जन के तानेबाने में पिरो देता है और रचना समय की पहचान बन कर ज़ेहन के द्वार पर दस्तक देते हुए हमें जीवन जीने के हेतु संघर्ष की प्रेरणा देती है। समकालीन कहानीकार विभिन्न प्रयोगात्मक स्थितियों से गुज़रते हुए ख़ालिस एक भावानुभूति अथवा जीवन के एक घनीभूत क्षण को कहांनी के संक्षिप्त कलेवर में प्रस्तुत करता है। अन्य कश्मीरी कहानीकारों के साथ साथ आज कश्मीरी भाषा के कहानीकारों में मक्खन लाल पण्डिता ('करनु फ्युर', 'गिरदाब') एवं डॉ॰ रूपकृष्ण भट की कहानियाँ भी काफ़ी चर्चित रही हैं।

◆◆◆

कहानीकार डॉ. रूपकृष्ण भट्ट अपने वर्तमान के प्रति पर्याप्त सचेत हैं। बुद्धिजीवी होने के कारण वह हर घटित होने वाली घटना/दुर्घटना की मानसिक प्रतिक्रिया को तर्क की तुला पर तौल कर कल्पना के सहारे कहानी के माध्यम से व्यक्त करता है।

❖ **'भाग्यवान'** शीर्षक से लिखी कहानी मानव सम्बन्धों पर गहराई के साथ सोचने के लिये विवश करती है। परस्पर के रिश्तों में यदि प्रेम पलता है तो आशायें जगती हैं, पनपती हैं, फलित होती हैं लेकिन यदि प्रेम औपचारिकता निबाहने का रूप ग्रहण करता है तो घायल हृदय तड़प उठता है। यही तड़प विस्थापित

पोशनाथ को अधीर कर देती है। यही वह स्थिति है जो कहानीकार मक्खन लाल पण्डिता की प्रसिद्ध कहानी 'करनुं फ्युर' में देखने को मिलती है।

❖ |'अता पता' शीर्षक कहानी एक विशिष्ट विस्थापित व्यक्ति की मानसिक स्थिति का हृदय द्रावक दृश्य प्रस्तुत करती है। उसे लग रहा है कि वह अपनी पहचान खो चुका है। रोशन लाल अपने खोये हुए कल की याद में आज का दिन गुज़ारना चाहता है लेकिन रह रह कर यादें उस के अस्तित्व को ही हिला के रख देती हैं।

❖ 'फ़ारूक का हेण्ड्स अप' कहानी आतंकी हाहाकार से जुड़ी एक सत्यकथा प्रतीत होती है। ज़ेबा एक निर्दोष सहज प्रकृति की महिला है जो आज भी गाँव के एक पण्डित पड़ोसी से पुत्रवत् स्नेह रखती है। उसे क्या मालूम कि विश्व स्तर पर चलाये जाने वाले राजनीतिक षड्यंत्र ने किस प्रकार आज कश्मीरियत को दाग़दार बना दिया है। कहानी एक मुलाक़ात से जुड़ी है, पुरानी यादें बरबस मानस पटल पर बिजली के समान कौन्ध उठती हैं और वर्तमान – रूह तड़पा देने वाला वर्तमान खण्डित मानव मूल्यों के सामने एक नहीं अनेक प्रश्नचिह्न लगा कर रक्तस्राव दिखाई दे रहा है। घटना एक ऐतिहासिक दुर्घटना को रेखांकित करती हुई संकट ग्रस्त मानव अस्तिव को झकझोर डालती है।

❖ 'रचना' शीर्षक से लिखी कहानी दफ़्तरी रिश्तों से जुड़ी आत्म विश्लेषण प्रधान एक लघु रचना है जिस में अनुभूत सत्य को कागज़ पर उतारने का प्रयास किया गया है। अप्रत्यक्ष रूप से कहानी कार पुरूष प्रकृति पर चोट करते हुए ऑफ़िस की दुनिया और निजी दुनिया में संतुलन बनाये रखने की आवश्यकता को रेखांकित करते हैं।

❖ **'आंधी शरद की'** कहानी मूलत: दो परस्पर विवरीत मन:स्थितियों की कहानी है। कहानी एक पण्डित परिवार के विस्थापन से जुड़ी है। आज भी उन की मुसलमान पड़ौसी महिला ज़ेनद्यद उन की याद में तड़प रही है और अपने भोगे हुए जीवन की मधुर स्मृतियों के सहारे जीने का उपक्रम कर रही है और बहू पड़ोसी देश द्वारा पोषित आतंकी माहौल में साँसे लेकर सपनों की दुनिया में आत्मसंतोष को तलाश रही है। नई पीढ़ा की इस सोंच पर आश्चर्य नहीं होना चाहिये। ज़िन्दगी का यथार्थ है — बीभत्स, कडुआ और असहनीय। रिश्तों में दरार पड़ गई है और इंसानी सोंच दानवीय शिकंजे में फंस कर बेहाल हो चुका है।

❖ आत्म कथात्मक शैली में लिखी गई कहानी **'उस की बात'** वस्तुत: एक युवा मानस की व्यथा वेदना, पराजय बोध और अनिश्चयता से जुड़ी मनोविश्लेषण प्रधान रचना है।

❖ **'जवाँमर्ग अरमान'** एक व्यंग्य प्रधान रचना है जिस में सर्वत्र आज के विवश मानव जीवन की बेबसी से उत्पन्न करूणा छाई हुई है। निज़ामे मुस्तफ़ा के दावेदार अपने ही देश बन्धुओं की निर्मम हत्या कर के चले गये और पण्डित त्रिलोकी नाथ, एक प्रतिष्ठित सज्जान अपनी माँ, पत्नी, दो बेटे और एक बेटी की हत्या होते देख 'त्रयबक्की' बन जाता है। वह अपना मानसिक संतुलन खो बैठता है और ज़िन्दगी उस के लिये बेमानी हो जाती है। वह पागलों की तरह अर्द्धविक्षिप्त अवस्था में इधर उधर घूम घूम कर दिन व्यतीत कर रहा है। इतिहास के पन्नों पर यथार्थ अंकित हो जाता है और मानव के दानवीय व्यवहार तथा पास पड़ौसियों की भयाक्रान्त चुप्पी परम्परागत विश्वासों पर कलिख पोत देती है। ज़िन्दगी का यह हादिसा निस्सन्देह आँसुओं से सना है और रिश्तों की पुख्तगी पर सोचने के लिये विवश करता है। क़हानी का आकार अत्यंत संक्षिप्त है। कहानी का उत्तरार्द्ध आज़ाद देश के चुनावी मायाजाल से जुड़ा है और नेताजी 'डाकू भैया' चुनावी

अखाड़े में उतर कर ज़ोर आज़मा रहे हैं, यही आज की हकीकत है।

❖ **'मुजाहिद साहब'** आतंकी भय और प्रकोप से जुड़ी एक अत्यंत सुन्दर मनोविश्लेषण प्रधान रचना है। बन्दूक के भय ने न केवल कश्मीरियों के होंठ सी लिये हैं अपितु आत्मविश्वास भी उन से छीन लिया है। वे एक तरह से नरपंगु बन कर रहगये हैं। आतंकी की आत्मलिप्सा न केवल बीभत्स है अपितु घृणा योग्य भी है।

बदले हुए माहौल में आदमी की आदमियत इस हद तक निष्क्रिय होजाये गी शायद किसी को भी इस का अनुमान तक नहीं था। मनोविश्लेषण की दृष्टि से प्रस्तुत कहानी पर्याप्त महत्त्वपूर्ण है।

❖ पारिवारिक विघटन, बिखराव और रिश्तों की निरर्थकता को लेकर **'जिम्मी जॉनी और लाला सॉब'** शर्षक कहानी लिखी गई है। यह एक चिन्तन प्रधान विचारोत्तेजक रचना है। यह कहानी दायित्वबोध से जुड़ी है। बुजुर्गों के प्रति क्या हमारा कोई दायित्व है? समकालीन जीवन के दायित्व हीन व्यवहार प्रक्रिया पर चोट करते हुए इंसानी रिश्तों में आये हुए बदलाव को यथार्थ की आधार भूमि पर बड़ी ख़ूबी के साथ पेश किया गया है। कहानी व्यंग्य के तेज़ नश्तर से हमारे मन मस्तिष्क को चीर कर रक्तस्राव बना देती है। इसे यदि समस्या प्रधान कहानी कहा जाये तो अनुचित नहीं हो गा।

❖ ऐतिहासिक सत्य पर आधारित **'पर्वत के उसपार का सपना'** कहानी आतंकी हाहाकार से जुड़ी मुजाहिदों के क्रूर व्यवहार की एक दर्दनाक तस्वीर पेश करती है। इस कहानी का आकर्षण भयाक्रान्त मनोविश्लेषण में देखने को मिलता है। आतंकी माहौल में हर वस्तु के प्रति शंकालु हो उठना स्वाभाविक है। आज का कहानीकार अपने भोगे हुए यथार्थ के साथ गहराई में जुड़ा हुआ है। वह साहित्य को जीवन का पर्याय मान कर पाठक को परिवेश के प्रति सचेत करते हुए बदलते मानव मूल्यों पर कस कर प्रहार

करते हैं। मंच पर क्या हो रहा है यह उतना आवश्यक नहीं जितना पर्दे के पीछे चल रहे षड्‌यंत्र को पहचान कर उस के प्रति सावधान होने की आवश्यक्ता है।

❖ **'तुम्हें भूला नहीं हूँ'** शीर्षक कहानी को कहानी कहने में मुझे संकोच हो रहा है। यह वास्तव में संस्मरणात्मक शैली में लिखा गया आत्माभिव्यक्ति प्रधान शोक पत्र है।

❖ **'साहब'** कहानी एक सत्य कथा प्रतीत हो रही है। सेवानिवृत्त होने के बाद साहब लोग राजसी ठाट बाट से वंचित होने के कारण न केवल श्रीहीन होजाते हैं अपितु शिथिल भी पड़ जाते हैं।

❖ तक़दीर जब सुधर जाती है तो तदबीर नई राहें तलाशने के हेतु प्रेरित करती है। इस देश में उच्च तकनीकी शिक्षा प्राप्त नौजवान भी नौकरी की तलाश में दरदर भटकने के लिये विवश हो रहे हैं और यह स्थिति उन्हें देश त्यागने के लिए मजबूर करती है। बुद्धि जीवी वर्ग का इस प्रकार देश त्याग स्वयं इस देश के लिये घातक सिद्ध हो रहा है। पृथ्वी नाथ जी ने कभी सपने में भी यह सोचा न था कि बस यात्रा के दौरान एक सम्भ्रातं महिला से हुई भेंट आशु की नौकरी का कारण बनजाये गी। **'मोबईल नम्बर'** शीर्षक कहानी विस्थापित पृथ्वी नाथ के पारिवारिक जीवन के संकट को उस की समस्त विवशताओं के साथ यथातथ्य रूप में प्रस्तुत करती है।

❖ विस्थापन के बाद बड़े बूढ़ों का सम्मानपूर्वक जीवन व्यतीत करना मुश्किल हो रहा है। परिवार की अवधारणा (Concept) ही बदल गई है। आतंक की आँधी किस प्रकार हिन्दू और मुसलमान दोनों को एक साथ बहा कर ले जाती है और विस्थापन शिविर में जीवन जीना किस प्रकार नरक भोगने से कम नहीं है – आदि विचारणीय मुद्दों को ले कर **'शफा'** कहानी लिखी गई है। बहू, बहू नहीं यमदूतिका बन गई है। विघटित मानव मूल्यों की करूण

दास्तान कहानी के माध्यम से मुखर हो उठी है।

❖ इंसान बन कर जीना और मानवता के सिद्धान्तों पर चलना महानतम साधना है, बस इसी लक्ष्य और उद्देश्य को लेकर **'इंसान'** कहानी लिखी गई है। आज के इस आतंकी दौर में जहाँ जहादी जनूँन सिरचढ़ कर बोल रहा है इंसानी रिश्तों की पुनर् व्याख्या करना सामाजिक स्वास्थ्य के लिये उपयोगी सिद्ध होगा। मूलत: हम सब सामाजिक प्राणी हैं।

❖ **'मक़सद'** कहानी एक ऐतिहासिक हक़ीक़त को रेखांकित करते हुए हमें खुद अपने आप पर लज्जित होने के लिये विवश करती है। दरिन्दों के अमानवीय कुकृत्य का शिकार बनजाती है हसीना— हमारी मासूम बेटी। इस दानव लीला में एक नहीं, कई हसीना हवस की भेंट चढ़ चुकी हैं।

'इस घर को आग लग गई घर के चिराग़ से'— वर्तमान सन्दर्भों के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत कथन पर विचार करना समय की विवशता है।

'मक़सद' किस का पूरा हुआ? यह विचारणीय है। रीशी साहब अपनी ही बेटी के क़ातिल हैं। खुद अपने मुँह पर कालिख पोत कर रुस्वा हुए। पाखंडी का ईमान बिगड़ जाने पर कश्मीरियत दाग़दार होकर विकृत हो उठी और इतिहास तमाशायी बनकर अपनी निरर्थकता पर मातम करने लगा। कहानी पढ़ कर कलेजा मुँह को आता है।

प्रस्तुत कहानी संग्रह को पढ़कर विज्ञ पाठक अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए अनेक अन्य बिन्दुओं पर भी विचार कर सकते हैं।

◆ ◆ ◆

डॉ. रूपकृष्ण भट्ट समकालीन कश्मीरी कहानी साहित्य के एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। वे अपने युग और युग के यथार्थ से जुड़े हैं। विस्थापित समाज के दुर्घटनाग्रस्त जीवन ने उन्हें मानवीय रिश्तों

पर पुनः सोचने के लिये विवश किया है। नैतिक मूल्यों के बदलाव, दायित्व हीन जीवन जीने की विवशता और इंसानी रिश्तों के बिखराव पर उन्हों ने अपनी कहानियों में पात्रों के पारस्परिक व्यवहार एवं क्रियाकलाप द्वारा सम्यक् प्रकाश डाला है।

श्री प्यारे 'हताश' जी ने हिन्दी में अनुवाद करते समय मूल स्वरूप के आकर्षण को सुरक्षित रखने का यथा सम्भव प्रयास किया है। उन्हें अनुवाद करने का पर्याप्त अनुभव है। प्रोफ़ेसर ओमकार कौल के पुरस्कृत हिन्दी कहानी संग्रह 'मुलाकात' का उन्हों ने कश्मीरी भाषा में 'मुलाकात' शीर्षक से अनुवाद किया है जो 2003 ई॰ में प्रकाशित हुआ। 'शानि पंजाब' शीर्षक से पंजाबी भाषा की चुनी हुई कहानियों का कश्मीरी अनुवाद भी डॉ॰ रतन तलाशी के साथ प्यारे हताश ने किया है। अंग्रेज़ी भाषा में लिखित डॉ॰ सर्वपल्ली राधाकृष्णन् (भूतपूर्व राष्टपति) के जीवन और दर्शन से सम्बन्धित पुस्तक का कश्मीरी अनुवाद भी सफलता पूर्वक 'हताश' जी ने किया है। स्वर्गीय सियाराम शरण गुप्त के काव्य एवं जीवनी से सम्बन्धित पुस्तक का कश्मीरी अनुवाद भी उन्हों ने किया है। यह अनुवाद कार्य उन्हें साहित्य अकादमी, नई दिल्ली द्वारा दिया गया था।

प्रस्तुत प्रयास हिन्दी पाठक के लिये उपयोगी सिद्ध होगा ऐसा मेरा विश्वास है। कम से कम हिन्दी पाठक हमारे संकट ग्रस्त जीवन की विवशताओं को पहचान कर इतिहास की ट्रेजिड़ी से अवगत होगा।

शिवरात्रि,
18 फरवरी, 2004 ई॰

प्रोफ़ेसर (डॉ॰) भूषणलाल कौल
एम.ए., पीएच.डी, डी लिट्
सेवा निवृत्त आचार्य एवं पूर्व अध्यक्ष
स्नातकोत्तर हिन्दी विभाग
कश्मीर विश्वविद्यालय
श्रीनगर—कश्मीर।

भाग्यवान

आज तक कभी भी इतनी ज़ोर से दरवाज़ा खट खटाने की आवाज़ नहीं सुनाई दी थी। बिजली न होने के कारण, दरवाज़े पर लगी ब्यल बजाने के बदले कोई दरवाज़ा ही ज़ोर-ज़ोर खटखटा रहा था। पोशा बहुत परेशान हुआ कि कहीं मकान मालिक ऊपर खिडकी से न देखकर आज सेवरे-सवेरे मुझ पर बरस पडे। चाय का कप वहीं रखकर तेज़-तेज़ दरवाज़े की ओर दौडने लगा। ज्यूँ ही उसने दरवाज़ा खोला तो जैसे उसके पाऊं तले ज़मीन सरकने लगी। आखें चौंदिया गई। जीभ हकलाने गली। मुह से आवाज़ तक न निकली।

आज बराबर नौ वर्ष के अन्तराल के बाद हमीद को अपने समक्ष देखकर वह जैसे सकते में आगया। वह चकित भी हुआ और परेशान भी। हमीद की टांगे भी कुछ-कुछ डगमागा रही थी। उसने पोशा को गले मिलने के लिए सम्भवतः अपने बैग को जल्दी से नीचे रखा और अपनी बाहें उपर की ओर करने लगा, पर पोशा क्रोध भरी आखों से पीछे मुड़ कर अपने ही स्थान पर बैठ गया। हमीद भी अन्दर आकर धीरे-धीरे पोशा के सामने बैठा। दोनों जैसे किसी अचम्भे में पड गये। पोशा इस विचार में था कि इतने वर्षे के बाद हमीद को कैसे असकी याद आगई। वह उसे घूर-घूर कर देखता रहा। बराबर वही चेहरा, वही हटा-कटा शरीर, वही चेहरे का भोलापन जो हमीद का पिछले बीस वर्षों से चला आरहा था, पर केवल अन्तर एक बात का था वह यह कि हमीद के उस चमकीले मुख पर काली दाड़ी, उसके गाल उस दाडी के नीचे नहीं दिखाई देते थे। हमीद के

चेहरे पर बदले हुए हालात का पूरा-पूरा प्रभाव साफ़ दिखाई दे रहा था।

आशा जी हमीद के लिये पानी का गिलास लेकर कमरे के अन्दर चली आई। थर थराते हाथों से हमीद ने पानी का गिलास इतनी जल्दी से पिया जैसे बहुत समय से प्यासा ही रहा हो। पोशा के चेहरे की हालत देखकर उसने उसकी हालत को भाँप लिया, और फिर गम्भीर होकर पोशा से कहने लगा। तुम्हारे बिना अन्दर ही अन्दर मेरे कलेजे के टुकडे हुये थे पर करता भी क्या, हालात का गुलाम बनके रहा था। मुझे ज्ञात है कि तुम मुझ से नाराज़ हो। तुम्हारी नाराज़गी सही है, पर क्या आपको उस परिस्थिति का ज्ञान नहीं है ! हम तो अन्दर ही अन्दर सिकुढ़ चुके थे। अपनी इच्छा से साँस तक भी नहीं ले सकते थे। पर इसका कदापि यह अर्थ नहीं कि हम आपको किसी भी कारण भूल चुके थे। तुम्हारे बिना हम किस काम के। ऐसा कहते-कहते ही उसने अपने बैग़ से बहुत सारे कागज़ निकाले और पोशा के सामने मेज़ पर रख दिये। ये कागज़ ठीक करवाने थे, तुम्हारे ही हाथ से लिखे है ना?

पोशा का अनुमान सही निकला। हमीद अपने मतलब से ही वहां आया था। पोशा को हमीद के इस पाखण्ड पर बहुत आश्चर्य हुआ। कलेजा फटा जारहा था उसका। हालातों को आड़ेलाकर किस प्रकार हमीद ने अपने आप को निर्दोष साबित करने का प्रयत्न किया। उसे गले तक यह बात आरही थी कि कहूँ कि अरे छलिया हमीद, तू तो हर महीने यहीं से घूमा करता था। क्या तुम्हें हमारी तरह रास्ते बन्द कर दिये गये थे? क्या हमारी तरह तुम्हारी सांसों का पीछा किया जा रहा था? क्या तुम एक बार भी हमारे हाँ नहीं आ सकते थे? पर यह सारी बातें अन्दर ही अन्दर हुआ करती हैं। बाहरी तौर थोडा ही उसे साहस था कुछ कहने का। मूलतः वह था ना बट्टा (कश्मीरी पंडित) खोफ़ खाने वाला, डरपोक। सोंचता बहुत कुछ है पर कुछ

भी नहीं कर सकता। बातों को प्रकट करने का उस समय कोई लाभ भी नहीं था क्योंकि हमीद के पास मानवीय आकांक्षाओं का कोई मूल्य ही नहीं था। वह केवल एक व्यापारी ही था जो सदा लाभ और हानि के तराज़ू में ही बातों को तोला करता था।

अपनी भावनाओं को काबू में रखकर पोशा ने कागज़ात को देखना आरम्भ किया।

क्या कारखाना चलता है? पोशा ने पूछा। हमीद ने मुस्कराकर कहा। कैसा कारखाना? वहां तो दूसरा ही कोई कारखाना चल रहा है। सुनो, जो ज़मीन मैं ने बारामूला में लोहे का कराखाना खोलने के लिए खरीदी थी, उसपर मैं ने केवल टीन का शे'ड ही बनाया था, फिर जो हालात ही बिगड़ गये तो मैं कारखाना क्या खोलता। गत आठ वर्षो से वहां सी.आर.पी बैठी हुई है। अब मैं कारखाना बन्द होने का हरजाना और सरकार से शे'ड का किराया वसूलने का दावा करना चाहता हूँ। इस में केवल आप ही मेरा मार्ग दर्शन कर सकते हो।

पोशा ने हमीद के व्यापारिक दिमाग़ को भांप कर कागज़ों को उलट-पुलट कर कहा। मै इस विषय में तुम्हारी ज़रा भर भी सहायता नहीं कर सकता हूँ। मैं ऐसे काम नहीं करता हूँ। हमीद ने वास्केट के अन्दरूनी जेब में हाथ डालकर वहां से रुपयों का एक बंडल निकाला और पोशा के सामने रख डाला। लीजिये यह तुम्हारा चाय-पानी। रही बात मुआवज़े की, वह जो तुम कहोगे। पोशा ज़्यादा ही गम्भीर हो गया। हमीद, मैं ने सच ही कहा, मै ऐसा काम नहीं कर सकूँगा। मुझे तुम्हारे रूपये नहीं चाहिए। ये रख लो ना, रास्ते में काम आयेंगे। हमीद एकदम खडा हुआ। सुनो मुझे जल्दी नहीं है, इस समय मैं मुम्बई जा रहा हूँ। वापसी पर मैं यही से हो आऊंगा। ये रख लो ना, दस हज़ार रुपये, बाक़ी वापसी पर दे दूंगा। मैं बड़ी आशा लेकर आया हूँ तुम्हारे पास। मैं ने कई (Chartererd Accountants) देखें परन्तु पोशा केवल पोशा है। अच्छा मुझे आज्ञा दीजिये, मुम्बई पहुँच कर दूरभाष से

बात करूँगा। यह कहते कहते ही वह तेज़ी के साथ दरवाज़े से बाहर निकला। पोशा को कुछ कहने का अवसर ही नहीं दिया। वह रुपयों का बंडल लेकर पीछे भागे ही जा रहा था कि हमीद ने टैक्सी ली और चल दिया।

हमीद के भी क्या कहने। बस केवल एक व्यापारी। हमीद बैल, हमीद लाला, हमीद ख़्वाजा या हमीद हाजी। उसे जो कोई जिस नाम से पुकारता, पर पोशा की नज़रों में वह एक भाग्यवान पुरुष था। एक वह पुरुष, जिसे जीवन में कदापि किसी वस्तु के लिये तड़पना नही पड़ा। जिस के जीवन का एक-एक क्षण सुख से गुज़र जाता, जिसे कभी भी पुस्तकों से यह जानने का अवसर प्राप्त तक न हुआ कि जीवन कटु अनुभवों तथा विषमताओं की एक लम्बी रस्सी है। हमीद वास्तव में अति सौभाग्य शाली था। राह चलते लोग भी उस से प्यार करते थे, अपने लोगों की बात ही नहीं। पोशा का कार्यालय उस के लिए बैठाला था। वह उसके हर काम का जैसे भागीदार होता था। हमीद के कागज़ों के पन्ने पलटते-पलटते पोशा विचारों की गहरी विचारधाराओं में खो गया और उसे हमीद के जीवन का एक-एक पन्ना याद आया।

कल ही की बात थी। सम्भवः बीस बरस गुज़र चुके होंगे। पोशा रिगल चौक स्थित अपने कार्यालय में बैठा हुआ था कि सलाम ख़्वाजा अन्दर आगये। उस के साथ पोशा के बराबर की आयुवाला एक लडका बैग लिये साथ था। पोशा कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। हमेशा की तरह सलाम हाजी को अपने सामने वाले सोफे पर बिठा दिया और फिर खुद बैठ गया। सलाम ख़्वाजा पोशा के बाप का बचपन से लंगोटिया दोस्त था। पोशा ने चारर्टड एकोन्टनसी पास करके अपनी कम्पनी खोली थी। सलाम ख़्वाजा उस के पास आकर अपने सारे कागज़ात ठीक करवाता था। इस लड़के की ओर संकेत करते हुये पोशा से कहा। पोशनाथा, यह हमीद है। पी.डबल्यू.डी में कलर्क है। इसी के बारे में कह रहा था ना यह वहां मेरी बडी सहायता करता है। यदि यह मेरे बिना

भी कभी तुम्हारे पास आया करेगा, इस का काम निपटाना। कोई बात नहीं, मैं यह बात ध्यान में रखूँगा- पोशा ने उत्तर दिया। फिर प्रायः हमीद ही सलाम ख़्वाजा के कागज़ लेकर पोशा के पास आया करता था। इस प्रकार इन के संबंध गहरे होते गये।

सलाम ख़्वाजा ठेकेदारी करता था और हमीद सहायक अभियंता के कार्यालय में एक कर्मचारी। यही सलाम ख़्वाजा की सारी बिलें पास करवाता था और टेंडरों की सूचना आदि भी दिया करता था। सलाम ख्वाजा इस के बदले कुछ न कुछ दिया करता था। यह सिलसिला तब तक जारी रहा जब तक सलाम ख़्वाजा 'ए' क्लास ठेकेदार बन गया और उसे बड़े-बड़े ठेके मिलते रहे। एक ओर से उसका काम बड़ता गया और दूसरी तरफ उसका शरीर अस्वस्थ रहने लगा। उसने एक दिन हमीद को घर बुलाया और कहा..... देखो हमीद लाला, तुम मेधावी भी हो और परिश्रमी भी। नौकरी में ज़्यादा आगे निकल नही सकते हो। तुम यदि उन्नति करना चाहते हो तो तुम नौकरी छोड दो और मैं अपने साथ रखूँगा। मेरा अकेलापन भी दूर होगा और तुम्हारी काया ही पलट जायेगी। तुम मेरी आय के चौथे भाग के भागीदार भी बन जाओगे। अब यदि नौकरी नही छोड़ना चाहते हो, तो एक वर्ष के लिये अवकाश पर चले जाओ। जो तुम वेतन पाते हो वह मैं देता रहूँगा। अगर एक वर्ष के बाद तुम्हें बराबरी नहीं आई तो तुम फिर नौकरी पर चले जाना। हमीद का मन उतावला होने लगा, पर यह प्रस्ताव अपने माता पिता के समक्ष रखने का उस में साहस न था। उसने पोशा से बहुत कहा कि वह उस के घरवालों को मनवाये।

पोशा सलाम ख़्वाजा के कहने पर विवश होकर सफाकदल में हमीद का घर तलाशने के लिए निकल पडा। दो तीन लोगों से पूछा कि हमीद उल्लाह कहाँ रहता है, पर किसी की समझ में नही आया, कि कौन है। आखिर जब उसने एक अधेड़ आयु वाली महिला से हमीद की शारीरिक आकृति और नौकरी आदि

के बारे में जानकारी दी तो वह ज़ोर-ज़ोर से हंसने लगी और कहा, अच्छा हमीद बैल, युसुफ गूंगे का बेटा। अव तक क्यों नहीं कहा? वह देखो, वही लकडी की झोपड पट्टी, वही तो उसका घर है। खैर, हमीद के घर पहुंच कर वह उसके माता-पिता से मिला और सारा वृतान्त सुनाया। एक से एक बडकर बातें करता गया उन के साथ। सलाम ख़्वाजा का बड़प्पन, उसकी दूर अन्देशी की कहानियां सुनाकर उन्हें मनवाया। इस प्रकार हमीद ने सलाम ख़्वाजा के साथ कन्धे से कन्धा मिला कर ठेकेदारी का व्यवसाय आरंभ किया।

समय व्यतीत होता गया। वर्ष, दो, तीन वर्ष - फिर हमीद ने मुड़ के पीछे नही देखा। वह शारीरिक तौर पर भी मोटा होता गया। एक दिन ऐसा सुअवसर आया कि सलाम ख़्वाजा ने बरज़ुला, श्रीनगर में लोहे का कारखाना खोला। लेन-देन और खरीदारी के लिए उसे कोलकत्ता जाना पडा। वह वहीं पर कुछ थोडा बहुत काम करके आया पर दूसरी बार उसने कच्चा माल खरीदने के लिए हमीद को भेज दिया। यह हमीद के लिए कश्मीर से बाहर जाने का पहला अवसर था।

सलाम ख्वाजा ने उसे सारे व्यावसायिक गुर सिखा दिये थे, इस लिये उसे किसी प्रकार की कठिनाई का सामना नहीं करना पडा। वह कोलकत्ता पहुँच गया और उसी होटल में रहा जिसका पता सलाम हाजी ने दिया था। उसका विचार था कि दो तीन दिन तक सारा काम समाप्त करके, वह वापस श्रीनगर चला जायेगा। वह दूसरे दिन प्रातः 'सिटील अथार्टी आफ इंडिया' के कार्यालय पहुंचा। भगवान की करनी कुछ ऐसी हुई कि सरकार ने उसी दिन से कच्चे माल की खरीद-फरोख्त पर प्रतिबन्ध लगाया। हमीद अन्दर से बहुत ही व्यथित हुआ। उस ने सोंचा कि सलाम ख़्वाजा ने उसे यह पहला विश्वसनीय और कर्तव्य पालन का काम दिया था। अब वह क्या मुंह लेके जायेगा उस के पास। उसने मन में र्निणय लिया कि वह खाली हाथ वापस कश्मीर नहीं

जायेगा, और तब तक प्रतीक्षा करेगा जब तक कि लगाये गए प्रतिबंध को उठाया न जाए। वह प्रतिदिन 'सिटील अथार्टी' के कार्यालय जाया करता था। दिन भर वहां के अधिकारियों से बातचीत करता और फिर शाम के समय होटल वापस लौटता। इसी बीच इस के संबंध कार्यालय के एक बहुत बडे अधिकारी से गहरे होते गये। ये संबन्ध इतने गहरे हुये कि यदि किसी दिन हमीद कार्यालय न जाता तो वह अधिकारी स्वयं उसे ढूँढने के लिये होटल पर आता था। एक दिन उस अधिकारी ने हमीद से कहा कि वह उसे कच्चामाल चोरी-छुपे बेचने के लिये दे सकता है पर कश्मीर लेजाने के लिये नही। वास्तव में उन्हें कच्चे माल का कुछ कोटा मिला करता था, जो यह अधिकारी ब्लैक में बेचना चाहता था। उस ने हमीद से कहा कि वे यह काम एक साथ मिलकर करेंगे और केवल गाहक बनाना उसके ज़िम्मे। इस ऐसी-वैसी आमदनी में हमीद का तीसरा भाग होगा। हमीद को यह बात अच्छी लगी। सच तो यह है, हमीद भी ऐसे ही चलन का आदमी था। इस प्रकार हमीद ने नया कारोबार करना शुरु किया। वह अब कोलकता के सिटील बाज़ार से पूरी तरह परिचित होचुका था। प्रायः वह लेन-देन का ज़्यादा काम होटल में बैठकर ही चला लेता था।

उधर सलाम ख़्वाजा बहुत उतावला हो चुका था। हमीद के घरवाले भी बहुत परेशान हो चुके थे। हमीद सब के लिये यही कहा करता कि चूँकि सरकार ने कच्चे माल पर पाबन्दी लगाई है, इस लिये अभी काम नही निकला। ज्यूँ ही काम निकलेगा, मैं वापस पहुंच जाऊंगा। चिन्ता करने की कोई बात नही। पर सलाम ख़्वाजा अन्दर ही अन्दर परेशान होता जारहा था। उसकी समझ में कुछ नही आरहा था। केवल एक ही विचार उसे कुरेद जा रहा था कि यदि कच्चा माल नही है तो फिर हमीद वापस क्यों नही चला आता है। हमीद के घर वाले भी उस के पीछे ही पडे थे।

जैसे-तैसे समय गुज़र गया। पांच छः महीनों के बाद कच्चे माल पर पाबंदी हटा दी गई। तब तक हमीद बहुत कुछ कमा चुका था। उसने वापस कश्मीर जाने का निर्णय लिया। जहाज़ का टिकट लेकर श्रीनगर पहुँच गया। वह सीधे राजबाग सलाम ख्वाजा के घर गया। सलाम ख़्वाजा ने ज्यूँ ही हमीद को देखा उसकी आंखों में एक चमक सी अत्पन्न हुई। विश्वास ही नही आरहा था कि क्या वास्तव में हमीद ही उसके सामने खड़ा है। गले लगाकर माथा चूमा। सम्भवतः इस से पूर्व सलाम ख़्वाजा कभी भी इतना भावुक नही हुआ था। हमीद ने सूट केस उठा कर सलाम ख़्वाजा के सामने रख दिया। सलाम ख़्वाजा ने पूछा कि यह क्या? हमीद ने जेब से चाबी निकाली और कहा, "ख़्वाजा साहब यह आप ही की शुभकामनाओं का परिणाम है"। सलाम ख़्वाजा ने सूट केस खोला जो रुपयों से भरा हुआ था। वह चकित हुआ, मुख पर लाली जैसे आई। ये रुपए कैसे हैं? उस ने घबराते-घबराते पूछा। ख़्वाजा साहब आप घबराइए नही, चोरी के रुपए नहीं है। इन में केवल आप की शुभ कामनाएँ है। सलाम ख़्वाजा और उतावला होने लगा और उसे सारा वृतान्त सुनाया। ख़्वाजा के चेहरे पर फिर एक बार लाली छा गई और फिर हमीद के माथे को चूमने लगा। चलो अब तुम्हारे घर चलते है। तुम्हारे माता-पिता बहुत परेशान है। हमीद ने कहाँ, "ये रुपए मै घर नही ले जाऊंगा इन रुपयो पर आपका अधिकार है। यदि आप मुझे कोलकता न भेजते तो मै कैसे इतने सारे रुपये कमा लेता।" तुम पागल होगये क्या, यह तुम्हारी निजी कमाई है। इस पर केवल तुम्हारा अधिकार है। इन दोनों के बीच इस पर वार्तालाप होता रहा, दोनों अपने सिद्धान्त पेश करते रहे। आख़िर फैसला हुआ कि बाकी कारोबार की तरह इसके दो बराबर हिस्से किये जायेंगे। इस प्रकार हमीद ने अपने दस लाख रुपय उठाये और घर की ओर चल पडा।

समय बीतता गया। श्रीनगर के लोहे के कारखाने में विस्तार किया गया। दूर दराज़ तथा पिछडे हुये इलाकों में कारखाने स्थापित करने की सरकारी योजनाओं का लाभ पिछडे वर्ग के लोगों तक पहुंचाने के भरसक प्रयन्त किए गये।

पोशा के हाथ में वही कागज़ लगा जो आज से दस वर्ष पूर्व वह हमीद के घर में लिखने के लिए गया था। यह उसका हमीद के घर जाने का दूसरा अवसर था। इस बार उसे हमीद का पता किसी से पूछने की आवश्यकता नही पडी। वह वही, उसी गली में पहुंचा जहां वह पहले भी जा चुका था। पर वहां वह रुक सा गया। उसे आगे जाने का साहस तक न हुआ। वह लकड़ी के लठों का घर उसे नज़र आया। बराबर उसी स्थान पर उसने लोहे की एक बडी सुन्दर डयोढ़ी देखी। डेवडी के एक कोने में संगमरमर के पत्थर पर सुन्दर अक्षरों से “बिहिशत मंज़िल” लिखा हुआ था। पोशा भौचक्का सा रह गया। उसे लगा कि सम्भव है कि वह गलत स्थान पर आया हो, वह वापस मुड़ गया। गली के नुक्कड़ पर उसने एक कश्मीरी नानवाई से हमीद का पता पूछा। जी हाँ, हमीद ख़्वाजा साहब, आप वापस क्यों लौटे। यही बडी डयोढ़ी है ना, उनकी है। पोशा स्तव्ध रह गया। वह वापस डयोढ़ी के पास पहुँच गया। वहाँ डयोढ़ी पर घंटी बजाई। अन्दर से नौकर निकला। क्या आप पुष्कर नाथ जी है, चलिये ख़्वाजा साहब आपकी प्रतीक्षा कर रहे है। पोशा निरोत्तर हुआ। अन्दर पहुंच कर पोशा ज़्यादा ही चकित सा हुआ। सुन्दर सा बंगला, बंगले के सामने बगीचा, बागीचे मे नाना प्रकार के फूल, बाग में फंवारे। बैठक के अन्दर जाकर वह ज़्यादा ही हैरान हो के रह गया। कालीन और सजावटी सामान उस ने केवल रिज़िडन्सी रोड के शौ रूम ही देखे थे। संगमरमर के फर्श और दीवारों पर उसे अपना चेहरा नज़र आ रहा था। पोशा तीन–और–तेरह के बीच में उलझ के रह गया। उसका विश्वास इस बात पर दृढ होने लगा कि जब भगवान् देने पर आता है,

वह पत्थर के टुकडों को भी सोना बना देता है। सच ही हमीद मुकद्दर का सिकन्दर था। कहते हैं जब भाग्य अनुकूल हो हो तो बुद्धि भी अच्छा विचारने लगती है। हमीद ने पोशा से कहा कि वह अब बारामुला में लोहे का कारखाना खोलना चाहता है। "वहीं कागज़ात दिखाने के लिए मैं ने तुम्हे यहाँ आने की तकलीफ़ दी।"

कागज़ को दोनों हाथों में बन्द करके पोशा ने जैसे कोई कपडे की चादर अपने चेहरे पर रखी। ओंखें बन्द की और वह समय याद करने लगा जब कागज़ पूरे करके उसने हमीद के हवाले किए थे और हमीद ने केवल टीन का शे'ड खड़ा किया था। यही वह ज़माना था जव सतीसर में आग लगना आरम्भ हुआ और चारों तरफ से आतंकवाद फैलने लगा। सलाम ख़्वाजा का घर भी उसी आग की चपेट मे आ गया था। कभी एक जमात उसके घर के बरामदे पर खड़ी होती और कभी दूसरी। इस प्रकार उसकी सम्पति भी जाती रही। यह सब हानि उसने बड़े साहस से सहन की पर जब एक दिन जहाद के नाम पर उसकी इकलौती बेटी जहादी उठा ले गये तो वह अन्दर ही अन्दर टूटता गया।

उसके शरीर को जैसे दीमक लग गया और इसी बहाने वह एक दिन अचानक चल बसा। साथ ही वे सारे सपने भी चकनाचूर हुये जो उसने हलीमा के बारे में संजोये थे। फिर हमीद कारखाने को कहां छोडता। वह हलीमा की तलाश में लगा। फिर उसके बाद क्या हुआ था, पोशा को उस का पता नही क्योंकि वह पलायन करके जम्मू चला गया था।

यह बात अब नौ वर्ष पुरानी हो चुकी थी। हमीद ने फिर से पोशा के घाव कुरेदने आरम्भ किये। पोशा का कलेजा जैसे फटने लगा और आखों में आसूं बह निकले। उसने लेखनी से हमीद के कागज़ के पीछे लिखना शुरु किया। "मानवीयता के सम्बंधों में यदि मानवता तथा मन के भावों को अलग किया जाये

तो रिश्ते खोखले बन जाते है। ऐसे रिश्तों की सार्थकता सन्देह पूर्ण होती है। इन्सानी रिश्तों की दूसरी त्रासदी यह है कि निजी सम्बंधों के दौरान उत्पन्न होने वाली आशायें। यदि इस दौरान किसी प्रकार की कमियां या त्रुटियां उत्पन्न हों, तो रिश्ते दूरियों में बदल जाते है, उनमें दरारे पड़ जाती है। मन के भाव टूट पडते है, और रिश्तों के विना रिश्ते जैसे आत्मा के बिना शरीर।

खैर, यह बातें तुम्हारी समझ से बाहर है। तुम केवल एक व्यापारी हो, एक भग्यवान व्यापारी, जिस के समक्ष भावनाओं का कोई मूल्य नही। तुम्हारे लिये इन कागज़ात से ज़्यादा नोटों का अधिक अर्थ है। इस लिये आप को बधाई हो। ये कागज़ात तुम्हारे कभी भी किसी भी स्थान पर काम आ सकते है। यह रहे, इस लिफाफे में। ये कागज़ात मेरे काम उसी प्रकार नही आयेंगे, जिस प्रकार तुम्हारे ये दुष्कर्म। जब तुम मुम्बई से वापस लौट आओगे, मै यहां नही हूँगा। अपनी अमानत वापस ले जाना।

पोशा ने क़लम नीचे रखा। सोफे पर दराज़ लेट गया। एक लम्बी सांस ली, जैसे उस की पीठ से एक भारी बोझ हल्का हुआ हो।

अता–पता

आज प्रातः से ही रोशन मायूस, और बेकरार था। सारा दिन कमरे से बाहर नही आया। अपना बिस्तरा तक नहीं उठाया था। आलस्य इतना छाया हुआ था कि न शेव किया और न ही स्नान। केवल बिस्तर पर इधर-उधर करवटें बदलता रहा। कभी बैठे रहता था और कभी लम्बे पाऊं लेटा रहता था। सर तकिये पर रख कर, पाऊं पसार कर छत को घूर-घूर कर देख रहा था। तोशा आकर उसके पाऊं के पास बैठ गई। हाथ सर पर रखकर जैसे दिलासा देने लगी। तुम क्यों चिंतित हो। अब क्या कहीं किराये का मकान तक भी नहीं मिलेगा। इतना जो बडा नगर है। फिर अगर कहीं नहीं मिलता है तो फिर हम भी माइग्रेंट कैम्पों में रहने के लिए जायेंगे। रोशन ने कोई उत्तर नहीं दिया। केवल मकान बदलने का विचार ही उसे परेशान करता था। अब जब से मकान मालिक ने उसे मकान खाली करने का हुकुम दिया था तब से वह बहुत ही परेशान हो चुका था। डेरा बदलते रहना उसके लिए एक भारी सा बोझ लगता था। सामान बन्द करना, टांगे या टैम्पू पर चढ़ाना, फिर नीचे उतारना, खोलना, उसके बाद फिर से कमरा सजाना उसे एक कठिन सा काम लगता था। इतना ही नहीं मकान बदल कर विभिन्न कार्यालयों पर जाकर अपना पता बदलवाना। राशन कार्ड, गैस सिलेंडर, बच्चों का स्कूल में दाखिला, बैंक का हिसाब किताब आदि। इस के बाद अपने नये डेरे के बारे में सूचित करना। काम करने में महीनों लग जाते थे। फिर यह पराया नगर और अनजाने लोग, न किसी से जान और न पहचान। पिछले नौ वर्षों से वह ऐसा ही

करता आया था। यह अब उस का पाँचवा मकान था जिसे वह बदलने वाला था।

उसे अपना आप अब एक लुढ़कते हुये लकड़ी के लठ्ठे की तरह लग रहा था। कभी एक स्थान पर और कभी दूसरे स्थान पर। जिस के हाथ लग जाता है वे उसे धक्के देदे कर आगे धकेल देता। उसे अपना अस्तित्व सुकडता और मिटता हुआ दिखाई देता था। उस के मन में भयंकर विचार पनपते रहे। उसकी बेकरारी अधिक ही बढ़ती गई। वह खड़ा हुआ और उतावला होकर सिगरेट ढूँढने लगा। अल्मारी को खटखटाता रहा। जेबों को टटोलता रहा पर सिगरेट कहीं नही मिला। वास्तव में आज दिन भर वह कमरे से बाहर नहीं निकला था। इस लिए वह बाज़ार भी न जा सका था। रोशन की बेकरारी देखकर तोशा भी परेशान हुई। बेड़ा ग़रक़ इन सिगरेटों का, तुम तो पहले ही इन सिगरेटों से सूख कर कांटा हो चुके हो। होंठ तक काले हो चुके है, पर रोशन भी उस का कहना कहाँ मानने वाला था। जब उसे कुछ सूझी नहीं तो उस ने झट से ऐशट्रे हाथ में उठाई और उस से सिगरेट के विट ढूँढने लगा। एक लम्बा सा विट उठाया, सुलगाया और उसके दो तीन कश लिये। कमरा धुआँ ही धुआँ हुआ और फिर तकिये के सहारे बैठ कर कुछ सोचने लगा। तोशा के लिये यह असहनीय था। वह एक दम उठ ख़डी हुई और हाथ हिला कर नाक-भौंहे चढ़ा-कर रोशन की ओर क्रोधित आखों से देखने लगी। जो भी आपको अच्छा लगे, कीजिए। इस प्रकार वह कंधे झाडती हुई कमरे से बाहर आई। रोशन को तोशा के रूठने से तनिक भी कोई फ़र्क नहीं पडा। ऐसे-एसे क्षण उस ने कितने सारे देखें थे। जब से घर-घौंसले का नाश हुआ तब से कितनी बार ऐसा उस के साथ हुआ था। रोशन ने फिर एक बार आज सुबह का समाचार-पत्र उठाया और वंह ख़बर ढ़ूंढने लगा जिस में लिखा था कि एक गुमनाम नवयुवक की लाश व्यथ (वितस्ता) से निकाली गई। लाश सड़ कर

इतनी विकृत हो चुकी थी कि उस की पहचान भी न हो सकी।

व्यथ (वितस्ता) शब्द को रोशन बराबर कुछ मिन्टों तक घूर-घूर कर देखता रहा। उसे अपना बचपन स्मृति के कण-कण में दिखाई देने लगा। वितस्ता नदी के किनारे सोमयार घाट पर तीन मंज़िल मकान जिस की एक दीवार नदी के बिल्कुल करीब थी। मकान के पिछले वाले कमरे को वह खिड़की जिस पर रोशन दिनबर बैठ कर वितस्ता को देखता, बस देखता ही रहा करता था। वितस्ता की कोख में उसे समस्त संसार के आनन्द का प्रवाह दिखाई देता था। इस के पानी में उसे मौसम का एहसास और समय की निरंतर चलने वाली गति भी दिखाई देती थी। घाट के निकट डूंगों (बड़ी नाव) में रहने वाले लागों के दैनिक जीवन को देखकर वह फूले न समाता था। कितने सारे नज़ारे वह देखा करता था दिन भर। नाव की नोक पर बैठ कर सुलतान हाजी का तंबाकू-चिलम गुड़गुड़ाना, साजा मासी तथा ज़ेना दीदी की रोज़-रोज़ की नोक झोक, तस्लीमा का गुलामा के साथ चोरी छुपे इश्क़ लड़ाना, सैलानियों का शिकारे में बैठ कर नौका विहार करना और हांजियों के बच्चों का वितस्ता के आर-पार तैर कर नंगे नहाना। बचपन से जवानी तक कितनी सारी यादें थी, रोशन के मन में वितस्ता से संबंधित।

उसे मास्टर हमीद उल्लाह याद आया, जो उसे दसवीं कक्षा में टयूशन पढ़ाने के लिये घर ही आया करता था और उसी पिछले 'व्यथ' वाले कमरे में पढ़ाता था। रोशन को समझाता था कि 'व्यथ' जिसे प्राचीन काल में 'वितस्ता' कहा करते थे, यह नदी भारत की पुरानी और सर्वोच्च नदियों में गिनी जाती है। इस का वर्णन ऋग्वेद और महाभारत में भी किया गया है। नीलमत पुरान में इस नदी का नाम नीलजा अर्थात् 'नीलनाग' की बेटी दिया गया है। नीलनाग जो कश्यप ऋेषी का बेटा था। कहते है कि कश्यप ऋेषी ने 'सतीसर' से पानी निकाल कर कश्मीर को बसाया और फिर कश्मीर को अपने बेटे के हवाले करके स्वयं

ईश्वर की आराधना में जुट गया। व्यथ से संबंधित हमीद मास्टर जी की ये लम्बी-लम्बी कहानियां रोशन को बहुत अच्छी लगती थी।

मास्टर हमीद प्रायः रोशन को हास्य व्यंग के लहजे में कहा करता था कि तुम भी 'नीलनाग' की ही सन्तान हो। उस ने तुम्हे 'व्यथ' का रखवाला बनाया है उसी कारण से तुम इस के किनारे बसे हो ना। तुम्हारा परिचय और तुम्हारी पहचान ही 'व्यथ' है। तुम व्यथ से बिछुड़ कर अलग नही रह सकते हो। रोशनलाल कौल सपुत्र सोहनलाल कौल, सोमयार घाट निकट वितस्ता, श्रीनगर कश्मीर। तुम्हारा यह पता हमेशा के लिए रहने वाला है। यह कदापि नही मिटेगा। वास्तव में तुम भाग्यवान हो। तुम्हारा नाम सर्वदा व्यथ के साथ जुडा रहेगा। जिस प्रकार 'व्यथ' प्रत्येक युग में बहती रहेगी, उसी प्रकार तुम्हारा आगामी वंश भी युग-युगांतर वितस्ता के तट पर बसता रहेगा। यह थी मास्टर हमीद की रोशन के लिए सीख और यही आशीवार्द भी था।

रोशन को सलाम डाकिये की भी याद आई। एक दिन डाक बाँटते-बाँटते वह गुलाम हांजी का पता न मिलने पर थक कर चूर हो चुका था। उस के नाम का मनीआडर देने के लिए उसे घाट-घाट का पानी पीना पड़ा था। डलगेट से जंगलात मंडी, वहां से अमीरा कदल, गाव कदल और अंत में सोमयार घाट। ज्यों ही रोशन सामने से नज़र आया, सलाम डाकिये नें उसके पाँव पकड़ कर गुलाम हांजी का पता पूछा और कहा अरे, यह हांजी लोग कहाँ एक ही स्थान पर टिकने वाले है, बकरवालों की भाँति बसन्त में एक स्थान पर होते है और पतझड में किसी और इलाके में। जिस घाट पर मन चाहे वहीं अपना डूंगा बाँध देते है। आपकी तरह इनका थोडा ही निश्चित पक्का पता होता है। न इनकी कोई खैर-खबर ना ही अता-पता। कृपया मुझे दिखाइए कि कहाँ उसका ठिकाना है। खुदा तुम्हे अपना पता हमेशा हमेशा के लिए साथ-साथ मौजूद रखें।

ज्यों ही तोशा ने ज़ोर से फिर दरवाज़ा खोला तो उस की कड़ी आवाज़ से रोशन दहल उठा। उस के हाथों से समाचार-पत्र खिसक सा गया। तोशा ने झट से अख़बार उपर उठाकर उसे बाथरूम की ओर फेंक दिया और फिर नलका खोल कर उसे बिगो दिया। त्राहि-त्राहि, धन्य है प्रभु का। कहीं बिस्तरा नही जला। यह सिगरेटों की बुरी लत?इतना इस अख़बार में क्या लिखा है कि आप अपने होश भी खो बैठे। मर जाते हम लोग। तब क्या मुंह लेकर यहां से निकल पाते। जैसे रोशन उनींदा सा था। उसके सारे शरीर में कम्पन सी थी। वह सरापा पसीने से भीगा जा रहा था। उस का हाल देख कर तोशा बहुत घबरा गई। उस ने पूछा, हाय, आप को क्या हुआ यह। क्या आप ठीक हो ना? क्या खो चुका है। बोलो ठीक हो ना? रोशन ने गले से निकली अटकती हुई आवाज़ में कहा, ''तोशा मैं ठीक नही हूँ।'' मैं अपना अता-पता खो चुका हूँ। हाँ खो दिया है मैं ने अपना समस्त अ...ता...प...ता।''

◆◆◆

फ़ारुक का हेण्डसअप

बस अड्डे की सीढ़ियों और रघुनाथ बाज़ार की चढ़ाई के नज़दीक ज्यूँ ही मैं मैटाडोर से नीचे उतरा तो सब से पहले मैं ने अपने आप को सम्भाला। कमर को सीधा किया। दायें बायें देखकर सडक पार करके बाज़ार की ओर चलने लगा। पहली बात तो यह है कि जव से हम इस शहर में आये तब से कमर झुका कर ही चलते हैं। न हम कैम्प के खीमे में ही अपनी कमर तान सकते है और न ही शहर के मैटाडोरों में। जैसे भेड-बकरियाँ होती हैं, सवारिया। इसी को कहते है कि एक की दाडी जलती है और दूसरा हाथ सुलगाता है। मैं इन ही विचारों में डूबा हुआ था कि उसी क्षण मेरे सामने एक अधेड़ आयु की एक महिला आई, उसके साथ दो आदमी दीवार की तरह खड़े हुए। मैं ने ज्यूँ ही गर्दन उपर उठाई और होंठो को जीभ गीला करना शुरु किया तुरन्त ज़ेबा मासी ने मुझे गले लगाया। मैं तेरे सदके जाऊं। अच्छे हो ना? तेरे लिए मेरा कलेजा फटा जा रहा था। क्या तुम सच ही बोबलाल हो? अरे तुम तो काफ़ी दुबले पतले हो चुके हो। तुम्हारी पहचान तक भी नही हो पा रही है। मैं ने कितनों से तुम्हारा अता-पता पूछा पर किसी ने भी नही बताया। देख ख़ुदा की कारसाज़ी, जैसे सौ लोगों ने तुझे मेरे सामने खड़ा कर दिया। ज़ेबा मासी ने मुझे मुंह खोलने ही नही दिया। मै ने जैसे तैसे अपने आपको उस से आज़ाद किया और पूछा कि मासी तुम यहां कैसे? मैं जैसे सपना देख रहा हूँ। चलो, उधर जाकर बातें करेंगें। मैं ने उसे सड़क के एक तरफ अपने साथ लिया।

आज आठ वर्षों के बाद मैं ने अपनी मां की बचपन की

सहेली ज़ेबा मासी को देखा। यदि वह दो दिन मुझे न देखती, वह बावली सी होजाती थी। मेरे लिए वह मां से फ़रियाद करने के लिए चली आती थी। मैं उसे निरन्तर देखता रहा। वह भी मुझे घूरती रही। बराबर वही ख़तोखाल, वही शरीर, वही चालडाल परन्तु उसके चहरे पर वह रौनक़, वह फरागथ और वह मुस्कराता हुआ आकार नहीं था। लग रहा था जैसे वह हंसना भूल चुकी थी। अपने साथियों की ओर संकेत करते हुए उस ने कहा कि यह फारोकलाला का सुसुर नबी करीम और यह गुलाम कादिर का बेटा। 'फारोक का सुसुर', मैं ने आश्चर्य से कहा। फारोक की शादी हुई क्या? फारोक का नाम सुनते ही उसके चहरे का रंग उड़ गया। एक लम्बी सांस लेकर उसने कहा, हाय क्या कहूँ, मुझ पर क्या आपत्ति आई। कितना कहों। मैं ने जान लिया कि उस के साथ कुछ घटना घटी है। मैं ने वहां पर बात करना उचित न समझा। मैं उसे एक निकटवर्ती होटल में ले गया।

अभी हम नीचे बैठने वाले ही थे कि नबी करीम और उसका बेटा टेलीफोन करने के बहाने फिर बाहर वापस चले गये। बैठते बैठते ही उस ने मुझ से कहा कि मेरे लिए कुछ नही मंगवाना। मैं होटल की कोई भी तैयार की हुई चीज़ नही खा सकती हूँ। देखा नही, ये लोग कैसे वापस लौट चले। पर मुझे केवल एक गिलास पानी चाहिए। मैं ने पानी मंगवाया और धीरे से बहरे को चाय, डबल रोटी और उबला अंडा लाने के लिए कहा। मुझे याद था कि ज़ेबा मासी को उबले अंडे बहुत अच्छे लगते है। वह जब भी घर पर उबले अंडे बनाती, मजाल है मेरा हिस्सा नही रखती। अच्छा बोलो, कुछ फारोक के विषय में कहने वाली थी। मैं ने उसे फिर कहा। ज़ेबा मासी ने एक ही धूँट में पानी का गिलास खाली क़र दिया और कहा।

मालूम नहीं है क्या, कितना ज़िद्दी है फारोक? क्या आपको पता नहीं कि आप लोगों के पलायन के बाद कश्मीर के

हालात किस तरह तेज़ी से बदल गए। तुम ने तो सुना ही होगा नौजवानों को वरगलाया गया। सब का एक लक्ष्य और नारा था आज़ादी। इसी आज़ादी के जनून में फारोक भी फंस गया। मैं ने उसे काफ़ी समझाया पर उस ने एक न मानी और आख़िर एक दिन वह घर छोडकर भाग गया। चारों ओर बहुत ढूँढा पर अता-पता कहीं नही मिला। धीरे धीरे मैं भी अपना साहस खो गयी। उस के बाद करीब दो साल हुए। एक दिन में शाम को निमाज़ पढ रही थी कि दरवाज़ा खट्खटाने की आवाज़ आई। मैं ने जान लिया हमेशा की तरह कोई भूखा मुसाफिर होगा। निमाज़ पढने के बाद मै उठी और दरवाज़ा खोला। सामने फारोक खड़ा था। उसके साथ एक लड़की भी थी। मै स्तब्ध सी खड़ी की खड़ी रह गई। ये दोनों अन्दर आ गये। फारोक ने फेरन के अन्दर से बन्दूक निकाला और खिड़की के उपर वाले ताक पर रख दिया। मुझ से कहने लगा। मां, यह तुम्हारी बहू रफीका है। मैं अवारु रह गई और साँस रुक सी गई। मै उसे कुछ कह भी न सकी। मुझे अब पूरा विश्वास हुआ कि लोग जो कुछ कह रहे थे, सच ही कहते थे। उन का कोई दोष न था। पर मुझे विश्वास नहीं हो रहा था। मै ने फारोक के साथ कोई बात नही की। फिर मुझे रफीका से मालूम हुआ कि फारोक ने उस के साथ ज़बरदस्ती निकाह पढ़ लिये है। वह उसे बहुत प्यार करता था। अपने साथ-साथ ले जाता था। अब जो रफीका गर्भवती हुई, उसे मां याद आई।

इस के बाद फारोक अकस्मात् गायिब होजाता था और कभी-कभी पन्द्रह दिन के बाद और कभी एक महीने के बाद घर आ जाया करता था। एक दो वार रफीका ने उसे ऐसा करने से मनाह किया था पर फारोक ने एक न मानी और दो टूक कह दिया कि उस का वापस मुडना अब असम्भव है। अब हम में कोई नही बच पायेगा। हम भी अब उस से इस बारे में पूछ ताछ करने का साहस नही कर सकते थे। एक दिन फारोक आधीरात

को घर से निकल पडा। कहते है कि गांव में ही किसी जगह पर मीटिंग थी। बहुत से इलाकों के मुजाहिद गांव के ही एक स्थान पर जमह हुये थे। फारोक को सड़क पर रखवाली करने के लिए रखा गया था। वह बन्दूक लेकर सडक पर इधर उधर चक्कर काट रहा था। कहा जाता है कि इसी समय वहां से सैनिक आ टपके। रात के अन्धेरे में फारोक को कुछ दिखाई न दिया। इसी दौरान एक सैनिक उसके निकट आ पहुंचा। फारोक ने जब यह जान लिया तो उसने 'ख़बरदार हैन्डसअप' चिल्लाया। पर बन्दूक उसके कन्धे पर ही रह गया। उसके हवास इतने उड़ चुके थे कि उसे यह तक भी ध्यान नही रहा कि बन्दूक की नोक सैनिक ही की ओर होनी चाहिये थी। फौजी आगे चले और फारोक को बन्दूक के साथ गले से पकड़ लिया। बाकी मुजाहिद भाग गये और फारोक को मार मार कर पकड़ के ले गये। उस दिन से आज तक हम उसे नही देख पाये। अब हमें कुछ दिन पहले पता चला कि फारोक जम्मू के सैन्ट्रल जेल में बन्द है।

ज़ेबा मासी ने जेब में रुमाल निकाल कर आँसू पौंछे। अब नबी करीम और गुलाम कादिर भी अन्दर आ गए। अभी ये लोग बैठने वाले ही थे कि बाहर से एक ज़ोरदार पटाखे की आवाज़ सुनाई दी। पटाखे का ज़ोर इतना था कि होटल की खिडकियां और दरवाज़े भी हिलने लगे। शायद कहीं बम फट चुका था। होटल के बैरे और प्रबन्धक तुरन्त आये और गाहकों को बाहर निकालने में लग गए। साथ ही होटल की खिडकियां और दरवाज़े भी बन्द करने लगे। ज़ेबा मासी के मुंह से ज़ोरदार चीख़ निकली 'इनका बेड़ा ग़रक़ हो और ये आंखों से अन्धे हो जायें।' क्या ये यहां भी पंहुच चुके है। मैं ने उसका बाज़ू पकडा और उसे बाहर निकाला। हम सिटी-चौक की ओर तेज़ क़दमों से जलने लगे और हमारे पीछे पीछे नबीकरीम और गुलाम कादिर भी.....

◆◆◆

रचना

करवटें बदलते-बदलते मैं सारी रात ऊब चुका था। मैं एक क्षण के लिए भी सो न सका था। वैसे तो मैं ने कितनी सारी रातें बिना नींद के गुज़ारी होंगी, पर आज की रात कुछ-कुछ क्रूर सी गुज़री। कभी मैं उतावला होकर उठ खड़ा होता, कभी कमरे में ही चक्कर काटता और कभी सरापा रज़ाई ओढकर यों ही गहरी नींद में सोये रहने का झूठा अभिनय करता। मैं ने अब के पहली बार अनुभव किया कि बिना नींद के रात कितनी बोझल बनकर जैसे काटने दौडती है। मेरे लिए एक-एक क्षण लम्बा होता जा रहा था। प्रकृति की रीत भी कैसी निराली है कि यदि रात को सो कर नींद का आनंद लेना न होता, तो सम्भवतः मनुष्य का जीवन ही अधूरा लगता। वैसे तो रात गुज़र गई। सुबह होते ही मेरी बेकरारी बढ़ती गई। मैं बार-बार घड़ी की ओर देखता था। गत पन्द्रह वर्षों में नोकरी करते हुये मैं समय से पहले कार्यालय पहुंचने के लिये इतना उत्सुक कभी नहीं हुआ था। रात भर की नींद उड़जाने और बेकरारी का कारण यह था कि आज का दिन 'रचना' के लिए उस कार्यालय में काम करने का अंतिम दिन था। आज के ही दिन उसे वहां से कार्यनिवृत होना था।

मुझे आज पूर्णरूप से लगरहा था कि 'रचना' किस प्रकार मेरे मन में समा चुकी थी। वह निःसंदेह मेरे जीवन का वह अंग था जिसके बिना मैं अपने आप को अधूरा ही समझता था। मैं ने यह तनिक सोचा तक भी नहीं था कि वह मेरे जीवन का एक अभिन्न अंग बन के रह जायेगी। पर यदि मनुष्य के निजी सोच

और अनुमानों से ही यह जीवन गुज़र जाता, फिर कुदरत के हाथ रहता ही क्या?

वह मेरे जीवन में वैसे ही समा चुकी थी जैसे कि बसन्त की मन्द-मन्द सुगंधित वायु किसी को भी गहरी नींद में सुला देती है। उसका धीरे से आकर मेरे जीवन से समाकर छा जाना और अब उसका वियोग मेरे लिए असहनीय बनचुका था।

हमारा आपसी परिचय भी ज़्यादा पुराना नहीं था। केवल दो वर्षों के भीतर वह मेरे करीब इतना आचुकी थी कि अब उस से दूर होने की पीड़ा मुझे दीमक की तरह अन्दर ही अन्दर कुरेदती जा रही थी।

मेरे समक्ष वह दिन........... जैसे कल ही की बात। मन्त्री के उटपटांग भाषण के बाद जब हम 'माडर्न गैलरी' के पिछले 'लान' की ओर चाय पीने जा रहे थे, कि मेरे कार्यालय के एक कर्मचारी ने मेरे कान्धों पर हाथ रखकर मुझे रोका। उसके बिल्कुल पास में ही एक साँवली साधारण और मंजली कद वाली लड़की खड़ी थी। उसका परिचय मुझ से कराया गया। उस संक्षिप्त सी मुलाकात से मुझे केवल यह ज्ञात हुआ कि 'रचना' नाम की लड़की मेरे ही कार्यालय की एक कर्मचारी हैं। मैं बिना किसी रुचि के उसको पूर्णरूप से देखकर आगे चल दिया। बराबर वैसे ही जैसे मैं सजी सजाई पेंटिगस को देखा करता था। मैं न चाहते हुये भी प्रत्येक पेंटिंग के करीब खड़ा होजाता, पेंटिंग पर सरसरी नज़रे जमाकर आगे बढ़ जाता। मेरे देखने का दिखावटी अभिनय ऐसा होता था जैसे मैं पिकासो के कुल का ही कोई उत्तराधिकारी था।

आर्ट गैलरी की डयोढ़ी से बाहर निकलने के साथ ही उन तस्वीरों की याद भी न रही और न अनचाहे मूल्यांकन करने वाले की।

अगले रोज़ जब मैं अपने दफ़तर पहुँचा तो 'रचना' पहले ही मेरे कमरे में बैठी थी। मुझे देखकर वह खड़ी हुई और

'गुडमारनिंग सर' कह कर मेरे हाथ में एक कागज़ थमा दिया। यह उसकी नियुक्ति का आदेश-पत्र था। उस की पोसटिंग मेरे ही कार्यालय में हुई थी। इस से पहले कि मैं उस से कुछ पूछता, उसने दस मिन्टों के अन्दर-अन्दर ही मेरे परिवार, मित्र आदि पसन्द ना पसन्द यानी सब कुछ मेरे विषय में जानने का प्रयास किया। मैं बहुत ही चकित होकर उसके चेहरे की ओर देखता रहा। मैं कल के परिचय और आज की इस मुलाकात के बीच जैसे खो गया था। मैं कल की साधारण सी अल्पभाषी और आज की बातूनी लडकी के उस अन्तर को भी मन ही मन टटोलता रहा। मैं उन्हीं सोचों में गुमसुम था कि उसने आग्रह पूर्ण लहजे में कहा - जी क्या केवल मैं ही बोलती रहूँ या आप भी कुछ कहेंगे। हाँ - हाँ, मैं अन्दर से ही सोचता रहा कि इसने मुझे बोलने का अवसर ही कब दिया, जो मैं बोलता।

हाँ - इस से पहले आप कहां काम कर रही थी? आप नहीं.......... तुम कह दीजिए। मैं आप से आयु और पद से भी बहुत छोटी हूँ। मेरे लम्बे कद को न देखियेगा। हाँ - हाँ यह बात भी सही है............ मैं ने जवाब दिया। मैं इस से पहले सूचना विभाग में काम कर रही थी। हाँ.......... इसी लिये तो आप बोली जा रही हो। वह खूब हंस पडी। पहली ही मुलाकात में उसका इतना हंसना और खिलखिला उठना मुझे पसन्द न था, पर उसके इस स्वभाव और प्रसन्नचित ने मुझे बहुत प्रभावित किया।

समय गुज़रता गया। उसका समय पर दफ़्तर पहुँचना, बैग से कापी कलम निकाल कर डिक्टेशन लेना, फिर फटाफट टाइप करके मेरे सामने रखकर इधर-उधर की बाते करना..... ....बातें........अपने घर की, माँ-बाप की और भाई बहनों की गिट्टी-पिट्टी। स्वयं चाय मंगवाना, मंगा कर कपों में उंडेलना फिर मेरे सामने बैठकर शीर-गर्म चाय के सिप लेना, बस यह उस का दैनिक नियम बन चुका था। इतना ही नहीं, वह खुद

नोटशीट और सारे ड्राफ्टस फाइलों में सजाकर प्रत्येक फाइल का शीर्षक तथा संभाल के रखने का स्थान भी अपनी निजी डायरी में दर्ज रखा करती थी। सारी फाइलों के केस उसे ज़बानी याद थे, जैसे खुद में एक सेक्शन थी।

समय के साथ-साथ 'रचना' के काम का भी विस्तार होता गया और उसके दैनिक स्वभाव में भी अन्तर आने लगा। अब वह कार्यालय के परामर्शी प्रश्नोत्तरों के अतिरिक्त मेरे निजी मामलों में भी हस्तक्षेप करने लगी थी। मेरी वेशभूषा, मेरे शौक और मेरे व्यक्तित्व की ओर भी उसने ध्यान देना शुरू किया। मुझे कौन सा रंग जचता है, कैसी टाई मैच करती है और मेरे बोलने का कैसा ढंग लोगों को प्रभावित करता है, इन सारी बातों को लेकर वह मुझे अपनी राय देती थी और मुझे जैसे बच्चे की तरह समझाती थी।

धीरे-धीरे उसके प्रति मेरा दृष्टिकोण भी बदलता गया। मुझे वह बहुत प्यारी लगने लगी। उसके सारे परामर्श मुझे अच्छे लगने लगे। उसका हर एक कथन मुझे वास्तिवक लगने लगा। मैं इस हद तक उसकी आड़ में आचुका था कि यदि 'रचना' किसी कारण किसी दिन दफ़्तर न आती तो जाने मुझ पर क्या गुज़रती। मैं उतावला सा होजाता। मेरी बेकरारी बड़ जाती थी। मैं एक कमरे से निकल कर दूसरे कमरे में जाता। कभी पुस्तकालय, कभी कैन्टीन और कभी पास ही एक बाग में टहल कदमी करता था। उसके बिना सारा दिन बोझल सा अनुभव करता था। एक इन्सान जब किसी भी चीज़ का आदी बन जाता है तो बात बेकाबू बन के रहजाती है। उस पर दीवाना पन छा जाता है।

चूँकि आज मेरी उस से आखिरी मुलाकात थी इस लिए मेरी बेक़रारी स्वाभाविक थी। सम्बंधों का बनना और फिर उन्हीं रिश्तों का टूट जाना, इन्सान के जीवन की एक बड़ी त्रासदी है। दो पराये दिलों का एक दूसरे से मिलन और इतनी नज़दीकियां

कि दूरियों का आभास तक न लगे। हमसफ़र बनकर फिर किसी डगर पर रिश्तों का अकस्मात् टूट जाना। वे रिश्ते जिन पर समाज की मुहर न लगी हो-वैसे रिश्तों की जलन एक इन्सान को अन्दर ही अन्दर दग्ध कर देती है।

विचारों की अथाह गहराइयों में डूबकर एक दार्शनिक की तरह जैसे-तैसे मैं दफ़्तर पहुँचा। हर रोज़ की तरह आज भी 'रचना' मेरे दफतर के सोफे पर बैठी हुई थी। मुझे देखकर वह तुरन्त उठ खड़ी हुई। मेरे चेहरे को देखकर उसने मेरे मन को टटोला। वह झट से पानी का गिलास लाई और मेरे हाथ में थमा दिया। मैं ने एक ही घूंट में गिलास खाली कर दिया। गिलास मेज़ पर रखकर 'रचना' की आखों में आखें डालकर उसे घूर-घूर कर तकता रहा। 'रचना' आज संजीदा बन चुकी थी। उसने आह भरे लहजे में कहा ....'मैं आपको कभी-कभी हद से ज़्यादा तंग किया करती थी। इधर-उधर की बोले जा रही थी। मुझे क्षमा कीजिएगा।' वास्तव में यह एक मानवीय स्वभाव है कि जव उसे कान धरे कोई भी मिलता है, फिर वह बेकावू होकर बोले ही जाता है।

वैसे ही आप भी मेरी सुने जारहें थे ना? खैर....... मैं आप की बहुत-बहुत आभारी हूँ। अच्छा, मैं जाऊं क्या?

उसने यह बात बडे ही साधारण ढंग से कही। मैं चकित हुआ कि किस तरह सरल स्वभाव से उसने अपना दामन बचाये रखा। यह कहते-कहते ही उसने अपना बैग उठा लिया और चल पडी। मैं स्तब्ध रहकर न उसकी किसी बात का उत्तर दे सका और ना ही उसने मेरी प्रतीक्षा की। वह जल्दी-जल्दी निकल पड़ी। दरवाज़े को ऐसे पीछे मारा कि मैं उसकी आवाज़ से ही नीचे बैठ गया। मैं विस्मित होकर दरवाज़े की ओर आखें लगाये देखता रहा, जैसे मेरी सारी आकांक्षाओं का किसी ने गला घोंट लिया हो।

◆ ◆ ◆

आंधी शरद की

आज प्रातः से ही आकाश बादलों से ढका हुआ था। धूप की एक किरण भी दिखाई नही दे रही थी। धीरे धीरे हवा के झोंके सुवह से ही आ रहे थे। मध्याह्न तक आते आते हवा तेज़ बहने लगी। ज़ैनादयॅद उपर वाली मंज़िल से नीचे आई और अपने बरामदे में बैठकर आकाश की ओर देखने लगी। शाली खेतों में थी और उसे चिन्ता थी कि यदि कही पानी बरसना शुरु हुआ तो क्या होगा। ज़ेना दयॅद हवा से खासकर शरद की हवा से बहुत डरती थी। पतझड की हवा जंगल के आग की तरह फैलता है और वृक्षों, मकानों और इन्सानों को भी अपनी चपेट में ले लेती है। एक नज़र में वह आकाश की ओर देखती थी और दूसरी नज़र से खलियान को निहारती थी। खलियान अभी खाली था। सारी शाली अभी खेत में ही थी। वह बेकरार सी हो गई। उस में यह एक बडी कमज़ोरी थी कि वह एक दम घबरा जाती थी, पर करती भी क्या, दुर्भाग्य ने उसे पहले से ही आ घेरा था। कहते हैं 'जो तन लागे सो तन जाने।' इसी सोच में थी कि अकस्मात् उस की नज़र आंगन के उसपार विशवमाली के घर पर पड़ी। उसकी जैसे जान चली गई। जैसे शाली और खलियान भूल गई। जब भी उसकी नज़र उस मकान की तरफ पड़ती, मानों उस मकान की खिड़कियां और दरवाज़े जैसे उसे खाने को दौडते। दायां हाथ अपने गालों पर रखा और पूरे ध्यान से विशवमाली के दरवाज़े की ओर देखने लगी। दरवाज़े के उपरवाले हिस्से पर मकडों का जाल जैसा बना हुआ था। दरवाज़ें के निचले वाले हिस्से पर जैसे मशरूम निकल आये थे। चुटकनी में

ज़ंग लग चुका था और दरवाज़े को जैसे मिट्टी का लीपन किया गया था। इस मकान की दुर्दशा से यही ज्ञात होता था कि यह मकान एक लम्बे समय से घर के सदस्यों के बिना है।

ज़ेनादयॅंद ने एक लम्बी सांस ली और न जाने किन विचारों में खो गई। विशमाली की चींखें उस के कानों में गूँजने लगी। अरे अरे, क्यों दरवाज़ा बाहर निकाल दोगे? इस पर क्यों सवारी करने को चढे हो? तुम कहीं और नही खेल सकते हो क्या? घूम-घूम के आकर फिर इसी दरवाज़े पर चढ़ जाते हो। विशवमाली इस प्रकार से पोशा के छोटे बेटे आशु को कहा करती थी। पर काश, आशु को इस के चिल्लाने से कोई प्रभाव पड जाता। वह ज़्यादा ही चिढ़ जाता और उसे सवारी का ही सामान बना लेता। विशवमाली प्रायः हाथ में छड़ी उठाती और उसे भगाती। आशु दौड कर आंगन में अखरोट के वृक्ष के पास पहुंच जाता। टेहनियों पर चढ़ने का प्रयत्न करता। इस से विशवमाली ज़्यादा ही क्रोधित होजाती थी और चिल्लाने लगती थी। अरे अब अख़रोट के वृक्ष के साथ लिपट गया। क्या मुहल्ले के बच्चों की कमी है जो तुम भी आये। जाने उन की भला। उन्होंने तो इस पर एक अख़रोट भी नहीं रखा है। ज़ैना दयॅंद ने दुःखभरी एक लम्बी सांस ली। शायद सोंच रही थी कि दरवाज़ा भी वहीं है, अखरोट का वृक्ष भी पर विशवमाली कहीं नहीं। उसे जैसे अपने परिवार समेत शरद की आंधी ले गई। जाने वे सारे कहां खो गए, विशवमाली, सर्वजू, पोशा, रानी, पिचा और आशु।

ज़ैना दयॅंद को जैसे कांटे चुभने लगे। वह बरामदे से उठ खड़ी हुई और विशवमाली के आंगन में गई। आंगन के गिर्द चक्कर काटने लगी। फिर अख़रोट के वृक्ष के नीचे बैठ गई। वह टकटकी लगा कर इस मकान की ओर देखने लगी। उसे वे दिन याद आये जब वह दुलहिन बनकर आई और सब से पहले सर्वजू के मकान में ही प्रवेश कराया गया था। तब तक खॉल राथर का मकान कच्चा ही था। इस लिए इसे वही लाया गया

था। खॉल राथर और सर्वजू बचपन के मित्र थे। एक साथ पले वड़े थे और जीवन भर एक दूसरे के पडोसी रहे थे। ज़ेनादयॅद ने पहले दो लडकियों को जन्म दिया और उन के बाद गुलाम अहमद पैदा हुआ। विशवमाली की पहली बेटी सोनावटनी और उसके बाद पुष्करनाथ। गुलाम अहमद और पुष्करनाथ करीब एक ही आयु के थे। दोनों ने सम्बन्धों की और सुदृढ़ किया। दोनों निकटवर्ती गांव के विधालय में एक साथ पढते थे। फिर जब खॉल राथर का अकस्मात् देहान्त हुआ तो ज़ेना दयॅद ने चाहा कि गुलाम अहमद पढ़ाई छोड दे परन्तु सर्वजू ने ऐसा माना नही। उसने पोशा के साथ ही उसे भी मैट्रिक पास करवाया। दोनों एक साथ ही अध्यापक नियुक्त हुये। गांव के सर्वप्रथम सरकारी मुलाज़िम बने। सच तो यह है कि ज़ेना दयॅद कदापि सर्वजू का ऋण नही चुका सकती थी। गुलाम अहमद की शादी भी सर्वजू ने ही करवाई। पोशा की भी शादी हुई। दोनों के साथ साथ ही बच्चे भी पैदा हुये। तब तक सब कुछ ठीक चल रहा था, अचानक दरिया का पानी ही बदल गया। एक दूसरे का आदर सत्कार समाप्त हुआ। भाई बन्धुओं का संबन्ध टूट गया और पतझड़ की तीखी वायु ने इस ऋषियों की घाटी को अपने भयंकर चक्रव्यूह में फँसाया। यूँ ही आश्चर्य होने लगा और उस तूफान ने सब कुछ तहस नहस कर दिया। कुछ इधर बिखर गये और कुछ लोग उधर चले गये। घरों के घर उझड गये। बड़ी बड़ी हवेलियां खाली हुई। इन्सानों को तेज़ हवा अपने साथ पीर पंचाल के उस पार लेगई। यह वायु न थी बल्कि जाहिलों के द्वारा ढ़ाया गया क़हर।

ज़ेनादयॅद का बस चलता तो उन दुष्प्रचार करने वालों का संहार कर देती जो गांव-गांव और शहर-शहर जाकर बहुत समय से मस्जिदों और अस्तानों पर जाकर धर्म के नाम पर लोगों के जज़बात भड़काते है। इस दौरान आतंकवाद की राजनीति ने अन्दर ही अन्दर दीमक की तरह कुरेदना शुरु किया। उपर से जो झूठी सहानुभूति की पालिश चमकती दिखाई

दे रही थी वह अकस्मात् फीकी पड़ गई।

तब से ज़ेनादर्यद इस मकान की ओर घूर-घूर कर घन्टों देखा करती थी जब से सलाम पीर के बेटे रशीद ने उसे कहा था कि सर्वजू जम्मू में धूप के प्रचण्ड से दम तोड बैठा और विशवमाली पगला सी गई और घर घर फिर रही है। रास्ते के पथिकों से कश्मीर के घर के विषय में पूछती रहती है। पोशा अपने परिवार समेत कहीं खीमे में रह रहा है। मन करता था कि कौवा बनकर उड़ जाती और विशवमाली के पास पहुँच जाती। वहुत बार गुलाम अहमद से कहा कि जम्मू जाकर पोशा का हाल चाल पूछ कर आओं पर वह एक ही उत्तर दे देता कि ''काख'' नाराज़ होकर मुझे दण्ड देंगे।'

ज़ेनादर्यद एक अजीब सी उलझन महसूस कर रही थी। उस के चेहरे पर मायूसी छाई थी। आखें भीग चुकी थी। ज्यों ही उस ने दुपट्टे के आंचल से आंसू पूछना शुरु किये तो नसीमा की ज़ोर की आवाज़ से चौंक पडी। 'अरे मां तुम क्या इस कश्मीरी पंडित (बट्टा) के आंगन में कर रही हो, ज़रा इधर जली आओ'। नसीमा को ज़ेनादर्यद का इस तरह पश्चाताप् करना अच्छा नही लगता था। वह ज़ेनादर्यद को ऐसा करने पर बार-बार टोका करती थी। वह कितना भी कहे जाती पर ज़ेनादर्यद अपने करने और सोंचने पर अटल रहती। ऐसा करने से टलती भी कहां। उसे हस आंगन के साथ पचास वर्षे का लगाव था। वह उस आंगन को कैसे भूल जाती। इस बात पर नसीमा बार-बार अपने पति को ताने देती रहती थी कि न जाने तुम्हारी मां को क्या लगाव है इस कश्मीरी पंडित (बट्टा) के आंगन के साथ। वह यह बात बड़ी जलन के साथ अपने पति को कहे देती थी और यह भी कहती थी कि क्या उस आंगन में अतलस के गालीचे विछाये हुये है। घर में ठहरती ही नहीं बस चली जाती है उस आंगन में। गुलाम अहमद को नसीमा की यह गलत बयानी अच्छी नही लगती थी परन्तु कहता भी कुछ नहीं

था। न जाने मां का हाल देखकर उसने आज कैसे साहस से काम लिया और अपनी बीवी नसीमा को बकवास बन्द करने का आग्रह किया और साथ ही डाँटा भी की। तुम्हें कोई तमीज़ ही नहीं है। तुम्हें क्या ख़बर है कि यह आंगन हमारे लिये क्या है। यह कश्मीरी पंडित (बट्टा) का आंगन नहीं है, मेरा वचपन, ज़ेनादयॅद के यौवन की बहार इस आंगन से जुड़ी है। यह हमारे वन्धुत्व का साक्षी है। भूतकाल के साथ हमारा इतिहास जुडा हुआ है। तुम इसकी महिमा क्या जानो। तुम छली नगर वालों को क्या मालूम है कि सभ्यता, संस्कृति किसे कहते है? बन्धुत्व क्या होता है? तुम सब उपद्रव मचाने वाले होते हो। सब हंगामों की जड़। आज के झगड़ों के मूलाधार भी तुम ही लोग हो। हम गांव वालों को तुम्हारा यह सब कुछ भुगतना पडता है। गुलाम अहमद को जैसे वर्षों से लगी गांठ खुल गई। सारी बातें कह गया। मगर नसीमा भी ज़यादा चुप रहने वाली कहां थी। वह तैश में आई और क्रोध में आकर कहा, 'तुम दोनों मां पुत्र को पंडितों का टोना लग गया है'। न जाने तुम किस बात पर चिड़ गये। मैं ने इतना क्या कुछ कहा। आज भाई-भाई को पूछता नही, अब हमसाये की वात ही नही। वह भी दूसरे धर्म का पंडित हमसाया। अव अपने मुसलमान भाई होते तो वात दूसरी थी। इस बात पर गुलाम अहमद की अन्दर की ज्वाला भड़क उठी। उसने क्रोध में नसीमा से कहा, 'मुझे ज़्यादा बातें कहने को विवश मत करो'। क्या तुम ने यह भी नहीं देखा कि अपने धर्म के अनुयायों ने हमारे साथ क्या व्यवहार किया। 'अमा' मामा की विल्ला उठा के ले गये। सुँलगाडा की लड़कियों और बहुओं को क्या किया? सलाम हाजी को कुत्तो की तरह चौराहे पर मार दिया। अब तुम चुप रहो।

शायद नसीमा को अपनी गलती का एहसास होगया। वह तेज़ी से कमरे के बाहर आगई। छोटा बेटा इमरान उस के पीछे पीछे दौड पडा। उसने उसे पूछा बटट्रा क्या होता है। बट्टा नाम

सुन कर वह फिर चिडने लगी। वह क्रोध में आकर कहने लगी कि बटट्रा अपने लिय आकाश वज्र के समान होता है जिसे शरद की आंधी अपने साथ उड़ा के ले गई। उसने पलायन किया और मर गया मगर हम पर फिर भी बोझ बनके रह गया।

उसकी बात

मैं ने मुश्किल से राहत की सांस ली थी। धीरे-धीरे कमरे से सब चले गये थे। मै आहिस्ता आहिस्ता सोफे से उठ कर अपनी ही कुर्सी पर बैठ गया। मेज़ की बायें तरफ फाइलों का अम्बार एकत्र हुआ था। प्रातः से अब तक मै एक भी फाइल नही देख सका था। मै ने एक फाइल उठाई और बे दिली से इसे पढ़ने लगा। मै इसकी एक-एक पंक्ति पढ रहा था और इसी के साथ ही मेरी आखों के सामने कुछ देर पहले ही गुज़रे वाकिये का एक-एक सीन याद आ रहा था। मैं ने फाइल बन्द की और इसे मेज़ के बायें कोने में वापस फेंक दी। मै काम भी कैसे कर सकता था। मैं बहुत दुःखी हो चुका था। मुझे सारी दुनियां छल कपटी, स्वार्थी और बेईमान नज़र आती थी। हालांकि मुझे बहुत दिनों से निराशा हो चुकी थी, पर तब भी मेरे मूर्ख मन से क्यों यह आशा जगी थी कि पोशा की नौकरी कोई भी नहीं ले सकता है। ऐसे परिश्रमी और ईमानदार मुनष्य को क्यों नौकरी से निकाल देंगे। पर आज उस समय मेरा यह सारा भ्रम टूट गया जब पोशा हांपते हांपते मेरे कमरे के अन्दर आया, कागज़ का एक पन्ना मेरी ओर ज़ोर से फेंक दिया और कहा, 'लीजिये नौकरी भी ले गये छुट्टी कर दी मेरी।' कहते कहते सोफ़े पर दराज़ हुआ। मै अचंम्बे में रहा और स्तब्ध सा देखता रह गया। मैं पोशा से कुछ कह भी न सका। धीरे-धीरे कागज़ का पन्ना उठाया और पढने लगा। यह पोशा का नौकरी से निकालने का नोटिस था। मैं अपनी कुर्सी से उठ खड़ा हुआ और पोशा के पास एक तरफ सोफे पर बैठ गया। मै उसे कुछ कह न सका। धीरे

धीरे मैं ने अपना दाहिना हाथ उसके सर पर रखा और बायें हाथ से माँ की तरह उसके आंसू पूंछना शुरु किये। अब इसे ज़्यादा ही अश्रुधारा बहने लगी। ज्यूँ ही मै ने अपने दोनों हाथों से पोशा का सर अपनी ओर रख दिया, उस ने उसी तरह चिल्लाना शुरु किया जिस प्रकार सात महीनों का शिशु उसकी माँ से अलग होते समय चिल्लाता है। ऐसा क्रन्दन सुन कर सारे कार्यालय वाले एकत्र हुए। कुछ लोग उसे पानी पिलाने लगे, कुछ आश्वासन देने लगे और कुछ बाते करने लगे। पर पोशा रोता ही रहा। लगता था जैसे उसे जीवन भर का रोना, रोना था। उस ने दूधमुँहे बच्चे की तरह रोया। मैं उसे कुछ कह न सका। मुझे उस के स्वभाव की जानकारी थी। यदि मैं उसे दिलासा देने का प्रयत्न न करता, वह ज़्यादा ही भावुक बन कर रो लेता और दिन भर रोते ही रहता। उसे गलत दिलासा देना मुझे अच्छा नही लगा। यह सदमा उसे सहन करना था। इस प्रकार की घटना उसके साथ पहले भी हुई थी पर अब वह टूट सा चुका था। वह बात बात पर कहे जाता था कि मैं जन्म से ही अभागा हूँ। जिस की आवश्यकताएँ घर पर पूरी नहीं होते, घर के बाहर कैसे पूरी होंगी। उसकी यह सारी बातें जैसे मेरे जिगर को काटती थी। उसकी बात जैसे मुझे 'गुलि बकावली' की भांति दिल में अंकित थी....

पोशा का पिता सोनॅकाक धर सोपोर में रहता था। सोनकाक अधिक सोनॅ सोपोरी के प्रसिद्ध नाम से जाना जाता था। वह अपने इलाके में एक गण्य मान्य व्यक्ति के तोर पर जाना जाता था। उस के हां धन-दौलत, बाग बगीचे सब कुछ था। एक बहुत बडा धनवान पुरुष था। इस लिए पोशा बडे लाड प्यार से पाला गया था। पर ज्यूँही उसे स्कूल भेजा गया, उसकी माँ अचानक मर गई। माँ का ग़म भूल जाने के लिए सोनॅकाक ने पोशा को शहर में अपने ननिहाल वालों के हां छोड दिया। मामे बहुत ही अच्छी प्रकार पालन पोशन करते थे। मामियां पहले कम

ही, पर बाद में उन को भी इस से बहुत प्यार हो गया। फिर जब सोनॅकाक ने दूसरी शादी की तो पोशा पूरी तरह ननिहाल वालों का ही हो गया। सोनकाक पोशा को देखने के लिए चार-आठ दिन के बाद शहर आया करता था। वह अपने साथ सेवों की पेटी आदि और चावल दो चार त्रख भी ले जाता था। फिर जब उसकी दूसरी बीवी से बच्चे पैदा हुए तो उसका शहर आना भी धीरे-धीरे बन्द हुआ। पोशा के मामे उसे कभी कभी छुटियों में सोपोर ले जाते थे, पर सौतेली माँ का व्यवहार ज़्यादा अच्छा नहीं होता था। आख़िर सोनॅकाक को भी धीरे धीरे पोशा की याद कम होती गई और पोशा को भी घर के प्रति किसी प्रकार का प्रेम न रहा।

समय गुज़रता गया। सोनॅकाक भी भगवान् का प्यारा होगया और इस प्रकार सोपोर के सारे रास्ते पोशा के लिय कट गये। प्रायः मामियां, ज़मीन, जायदाद और सेव के बागों के बारे में ताने दिया करती थीं, पर पोशा अपना सारा रोष अन्दर ही अन्दर रखता था। जैसे तैसे पोशा ने बी.ए पास किया। सौभाग्य से छोटे मामाजी की अच्छी खासी पहुंच थी। उसने उसे एक ट्रेवल एजनसी (Travel Agency) में गाइड (Guide) के तौर पर नौकरी दिलवा दी। पोशा परिश्रमी भी था और खुश मिज़ाज भी। वह इस काम में पूरी तरह सिद्धहस्त हुआ। उसे घूमना अच्छा लगता था। कभी वह पहलगाम में होता था और कभी गुलमर्ग में, कभी कुकरनाग में और कभी मुगलबागों में। अब मामियां इस से ज़्यादा ही प्यार करने लगी थी। प्यार भी क्यों न करती। वह कभी खाली हाथ घर नही आता था। कहते हैं कुछ खाने को मिले, आशीर्वाद निकल ही जाता है।

कार्यालय में भी उस से सब खुश थे। निक्की उस से ज़्यादा ही करीब आ चुकी थी। वह मधुर नयनों से उसे देखती रहती थी। पोशा सिगरेट जलाकर 'ट्रावल गाइड़' पत्रिका के पन्ने पलट रहा था और अपने आप को व्यस्त होने का झूठा ही

आभास दे देता। वैसे तो वह निक्की की हर एक हरकत को भाँपता और उसकी अदाओं पर जैसे कुर्बान हो जाता। टेलीफोन की घंटी बजते ही पोशा के कान खड़े हो जाते। वह निक्की के रिसीवर उठाने, उसके हैलो कहने अर्थात निक्की के हर एक नख़रे पर आसक्त था। जब निक्की ने ज़ोरदार आवाज़ में कहा, 'पुष्करनाथ जी, आप का फौन' पोशा को विश्वास ही नहीं हो रहा था। उसने शायद पहली बार अपना पूरा नाम सुना था। वह फूले न समाया। इसलिए नही कि उसे फोन पर बात सुनने का शोक था, अपितु निक्की के हाथों की उंगलियों के साथ अपनी उंगलियों के स्पर्श से पोशा का सारा शरीर सिहर उठा। उसे पहली बार मर्द होने का एहसास हुआ। इस के बाद जब पोशा और निक्की पहली बार इक्क्टे 'ट्रिप' के साथ पहलगाम चले गए। फिर इन के बीच वे सारी दूरियाँ समाप्त हुई जो दूरियाँ उनके बीच पिछले दो महीनों से थी। एक अजीब विडम्बना थी। वे दोनों पहलगाम में इकट्ठे थे, चीड के वृक्षों की सुगंधित वायु से जैसे उन के शरीर के अन्दरूनी अंगों में आग सी भड़क उठी। लेदर के टंडे पानी से जैसे उन के भय और वहम में कोरा लग गया। उस दिन के घटनाचक्र ने उन्हें एक दूसरे के इतना करीब लाया, जैसे वे बाल्यकाल से ही एक साथ रह रहे थे। जाने क्या हुआ यह आयु का तकाज़ा है या प्रकृति की माया कि मनुग्य सारे संबंघों को निरर्थक मानता और केवल इस संबंध को अवदी (सार्वकालिक) मानता है। इन दोनों को भी ऐसा ही अनुभव हुआ। इन्हें एक दूसरे के अस्तित्व का पूरा एहसास हुआ। इन्हें लगा जैसे इन्होंने इतने वर्ष जान बूझकर अनजाने के अन्धकार में नष्ट किये थे।

इस के बाद वे अपने जज़बात नही छुपा सके। इन के प्यार की गाथा केवल कार्यालय तक ही सीमित नही रही पर अब पोशा की मामियां भी उसे बात-बात पर इस विषय को छेडती रहती थी। पोशा को अपना भाग्य निक्की में ही नज़र आता था।

यह बात उस दुखद समय तक चलती रही जब ऋषि वाटिका आतंकित अन्धकार के दायरे में आ गई। अफरा-तफरी हुई। षडयंत्र रचाये गये। लावड सिपीकरों पर युद्ध की घोषणा की गई। दमकियां दी गई। अखबारों में नोटिसें निकाली गई। निर्दोष लोगों को सड़कों पर मार दिया गया। हडकंय मच गया, शिष्टाचार की सीमायें तोड़ दी गई और अन्ततः कश्मीरी पंडितों को विवश होकर पलायन करना पडा। भाई को भाई का पता नहीं चला। बेटे को अपने पिता की ख़बर न रही और इसी तरह एक पडोसी दूसरे पडोसी के पलायन के बारे में अपरिचित रहा। इसी हाहाकार की लपेट में पोशा भी आया। उसके दरवाज़े पर कश्मीर छोडने की नोंटिस लगाई गई। फिर क्या था, न रही ट्रावल ऐजन्सी और न ही निक्की। अजब मलिक से नोशलब जुदा हो गई। पोशा भी पहाडों के उस पार चला गया। पोशा का सब कुछ लुट गया।

आखिर वह कब तक अपने दुर्भाग्य पर आंसू बहाता रहता। ऐसा केवल उस के ही भाग्य में नही हुआ था। कुछ समय दम सम्वाल कर फिर निकल पडा, कुछ कमाने की तलाश में। अब वह केवल अकेला नहीं था, तो बात बनती। अब ननिहाल वालों के अतिरिक्त सौतेली माँ और उसका कच्चा परिवार भी अपने ही कान्धों पर था। समय की गति एक तरफ जितनी अविश्वसनीय है उतनी ही मिलाप करने वाली भी। समय के चक्रव्यूह में मनुष्य कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है। सच ही समय बहुत बलवान है। जो बात कभी सोची भी नहीं होती है वही होता है। खैर, जैसे तैसे उसने टेम्पुल टयूरज़ एण्ड ट्रावल्ज (Temple Tours & Travels) वालों के साथ एक नाता जोडकर उनसे नौकरी हासिल की। अब पोशा फिर से तिनका-तिनका जोडकर अपने लिए एक आसरा बनाने के लिए भरसक प्रयत्न करने लगा। दिन भर परिश्रम करके कुछ कमाकर लाता और अपना गृहस्थ चलाता। पालकी वाला पालकी में कब तक रहता। कुछ समय के

बाद उन्होंने भी गुज़र बसर करना आरम्भ किया और अपने लिए रहने की जगह तलाशने लगे। पोशा भी कुछ-कुछ अपने आप को हल्का अनुभव करने लगा। पर सोतेली माँ, मामा और मामी इसी के साथ रहने लगे। इसी दौरान कम्पनी वालों ने दिल्ली में अपना एक कार्यालय खोला और पोशा की पदोन्नति करके वहाँ भेज दिया। माँ ने दिल्ली जाने से इन्कार किया और जम्मू में ही अपने बच्चों के साथ बैठ गई। मामे कभी जम्मू और कभी दिल्ली अपने सगे संबिन्धयों के पास आते-जाते रहते थे। धीरे-धीरे उन्होंने अपना ज़्यादा समय जम्मू में ही गुज़ारना आरम्भ किया। वास्तव में उन्हें दिल्ली का वातावरण रास न आया। आता भी कैसे? इस संगदिल नगर में किसे किस के लिए समय है। सब दौडे जा रहे है और सब परेशान। मतलबी रिश्तों का यह शहर उन्हें जैसे खाये जा रहा था। उन्हें अपना आप दो कमरों के फ्लेट में जैसे कारागार में बन्दी के समान लगता था। किसी से कोई बात-चीत नहीं। खैर वे दिल्ली में रहते या जम्मू में पर उनकी देखभाल पोशा के कन्धों पर ही थी।

ज़िम्मेदारियों की गहराइयों में फंसने के बावजूद भी पोशा के मन से निक्की की याद नही जाती थी। उसकी एक एक याद उसके कलेजे को चीरती रहती थी। मन के वैराग्य और अकेलेपन को दूर करने के लिए वह एक धुमक्कड़ की तरह भ्रमण करता था और इस तरह अपने आपको किसी न किसी काम में व्यस्त रखता था। कभी पर्यटकों के साथ जम्मू, कभी जयपुर और कभी आगरा जाया करता था। धीरे-धीरे उसके विचारों में भी परिवर्तन आने लगा। उसने सांसारिक भोगों से अपने को पृथक रखने का प्रयास किया। वह नाशवान संसार और परलोक के सुधार के विषय में मुझे भाषण देता रहता था। शेष आकांक्षाये उस के भीतर ठंडी पड़ चुकी थी। उसे अब निक्की भी याद नही आती थी। वह अपने वेतन का एक भाग अनाथालयों को दान देता था। वह प्रायः अनाथालयों में जाता था

और अनाथ बच्चों के साथ अपना बहुत सारा समय गुज़ारता था। वह कहा करता था कि भगवान ने उसे परोपकारी के रूप में ही जन्म दिया है। उसे अब ऐसे अनाथ बच्चों के लिये कमाना भी है और जीवित भी रहना है। वह अपना यह कर्तव्य बड़ी खूबी से निभाता था।

मुझे कुछ दिन पहले ही इस बात का आभास हो चुका था कि पोशा की यह नौकरी भी कच्ची ही है। अपनी ओर से मै ने भी अधिकारियों के पास जाकर पोशा की नौकरी बचाने के लिये उन से प्रार्थना की थी। उन्होंने मुझे काफी आश्वासन दिया था कि वे ऐसा करने के लिये पूरा प्रयत्न करेंगे। देश में पर्यटकों की आमद में कमी होने के कारण कम्पनी को पिछले महीनों काफी हानि उठानी पड़ी थी। इसलिये कुछ पदों (पोस्टों) को बचत में लाने का निर्णय लिया गया था। पर पोशा को इस बात का तनिक भी विश्वास न था। वह हमेशा की तरह दिन रात काम करके कम्पनी के लाभ के लिये खून पसीना एक करता था। उस अबोध को यह तक मालूम न था कि आजके दौर में आगे प्रगति करने के लिए केवल परिश्रम और ईमानदारी ही काफ़ी नहीं है अपितु अधिकारियों की चमचागीरी, चापलूसी, और हेराफेरी भी काम आती है। अतः पोशा जैसे आदमी को जिसके आगे पीछे कोई नही था, नौकरी से अलग करना मरे हुए को मारने के समान था। यही आज का यथार्थ भी है और न्याय भी।

पता नहीं भगवान क्यों एक दुःखी को ही बार बार दुःख देता है। यह बात मेरी समझ में कभी भी नही आई। गुलिबकावली की लम्बी गाथा का भी कही अन्त है पर पोशा की कहानी 'हज़ारदास्तां' की तरह उसी के समान संघर्षरत हज़ारों युवकों में ज़िन्दा है, जिनके हाथों में न उन का भूत है, न वर्तमान और शायद न भविष्य ही होगा।

◆◆◆

जावाँमर्ग अरमान

विपरीत परिस्थितियों के कारण मेरा मस्तिग्क इतना प्रभावित हुआ था कि मुझे फली फूली और लहलहाती क्यारियों पर ओले पड़ते तथा ग्रीष्मकाल में जैसे वर्षा होने का डरा देने वाला भय सदा रहता था। मैं ने फिर एक बार खिड़की से देखा। आकाश साफ था। सूर्य की तेज़ किरणों से दूर अपनी आखें बन्द करके रखना मुझे अच्छा लगता था। इस बीच चलचित्र की तरह सारा कुछ मेरे ज़ेहन में नाचता हुआ दिखाई देता था, जो मैं खुली आखों से नहीं देख पाता। देखता भा कैसे, वह सारा नज़रों से बहुत दूर हो चला था। बहुत पीछे रह गया था। सच मानिये, आखें खोलकर मुझे अच्छा नहीं लगता था जो मैं देखना चहाता था। उसका लेशमात्र भी मुझे दिखाई नही देता था। जो मै देखना नही चाहता था वही प्रकट हो जाता था। डर सा लग रहा था, जाने अब क्या क्या देखना पड़ेगा।

बाहर का शोर सुनते ही मैं ने आंखें खोली। बाहर देखा कि बहुत सारे बच्चे मूर्ख को न जाने क्यों बुरे नामों से पुकारते और पत्थर फैंकते थे। मैं बहुत बेकरार हो उठा। बै-चेन सा हुआ कि कहीं सारे बच्चे त्रिलोकी मूर्ख को किसी प्रकार की शारीरिक हानि न पहँचायें। वहीं से मैं ने बच्चों को चेताया। उनको लताड़ा। जब वे बाज़ न आये, तुरन्त नीचे सड़क पर चला आया। बच्चों को भगाया और फिर त्रेया के नज़दीक चला आया। उस ने मेरी ओर देख कर मुस्कराया। खैर, अब आखिर आ ही गये तुम। अच्छा हुआ। ठीक हुआ। चलो, चलते चलते, जीवन को देखते चलो। आज के इन्सान के साथ आपका भी

परिचय होगा। मुझे उसका यह बकवास भी समझ में नही आया। मुझे क्या, उसका बकवास किसी को भी समझ में नहीं आता था। त्रेया मूर्ख जन्म से ही मूर्ख नहीं था। आज़ से लगबग नौ वर्ष पहले त्रिलोकी नाथ कौल, एक खाते-पीते सम्पन्न घर का मुख्य सदस्य था। घर गृहस्थी वाला आदरणीय पुरुष। उसे अपने विभाग में वहुत आदर से देखा जाता था। केवल कश्मीरी पंडित ही नहीं अपितु मुसलमान भी उसे बड़ा मान आदर करते थे। वह सब की समस्याओं को सुलझा देता था और सब के साथ न्याय करता था। तब सब कुछ ठीक ठाक था जब तक उस के घर पर वैसा वज्र न गिरा था। शाम का ही समय था, त्रिलोकी नाथ घर पर नहीं था। उसी दौरान वे यमदूत दरवाज़े परा आ पहुँचे। घर के सब सदस्यों को आंगन में बुलाया गया ओर देखते ही देखते कुछ सेकंडों में उन्हें गोलियों से भून लिया गया। त्रिलोकी की पत्नी, माँ, दो वेटे और एक लड़की, सब को मार दिया गया। उसके जीवन के सारे सपने कुछ क्षणों में ही चूर चूर होगये। क़हते हैं इतनी गोलियां चलाई गई, जैसे सीमाओं पर युद्ध हो रहा था। पर गोलियों का शोर केवल त्रिलोकीनाथ ने सुना। किस का साहस था कि वह खिड़की या दरवाज़ा खोलता और उसके सामने आते। तसल्ली और ढाढ़स बंधा लेते, कम से कम लाशों को सम्भालने या अंतिम संस्कार करने का भी किसी में दम न था। फिर जब दूसरे दिन सेना आई तो उन्होंने ही दाह संस्कार किया। उस दिन से ही त्रिलोकी नाथ कौल का कलाम त्रेयाबक्की का वकवास बन गया।

त्रेयाबक्की ने फिर एक बार मेरी ओर देखकर मुस्कराया। मै ने भांप लिया कि यह मुझे अपनी ओर आने का संकेत कर रहा है। वह तेज़ तेज़ आगे चलने लगा। मैं ने भी उस के पीछे कदम वढाने शुरु किये। चौक पर पहुँचकर वह रुक गया। मैं भी स्तब्ध सा रहगया। उधर से लोगों का एक हजूम एक अर्थी के पीछे आ रहा था। मैं ने एक व्यक्ति से पूछा, यह किस की अर्थी

है? वह एक भगवान भक्त था, उसने कहा। कहते हैं किसी बड़े आतंकी ने किसी देश से आदेश दिया और इन यमदूतों ने एक मंदिर में पूजा करते करते उसे ढेर कर दिया। मुझे वह फिल्मी सीन याद आया जव अपने भक्तों को बचाने के लिए दुर्गा भगवती अपने शस्त्रों से आक्रमण कारियों का संहार किया करती थी। फिर आज ऐसा क्यों नही हो पा रहा है। क्या आज का भगवान सच ही कमज़ार और लाचार है। मैं ने अपने मन में सोच लिया।

मैं ने त्रेयाबक्की की ओर प्रश्नसूचक नज़रों से देखा। वह ज़रा सा मुसकुराया और कहने लगा, 'क्या तुम 1986 भूल गये हो? वे (भूर्तियां) अपने आपको नही बचा सके, दूसरों का क्या भला करते। कहता हूँ ना, ज़्यादा भगवान भक्त न बना करो। आज के मनुष्य का भाग्य भगवान नही अपितु इन्सान लिखता भी है मिटाता भी है। मनुष्य को देखकर एक वहशी दरिन्दा भी खोफ़ खाता है। चलो, चलते बनो, तुम्हें ये बाते समझ में नही आयेंगी। सच ही मेरी समझ में नही आ रहा था कि त्रेयाबक्की क्या कह रह था। मैं फिर उस के पीछे पीछे चलने लगा। कुछ आगे चलकर हम ने लोगों का फिर एक हजूम देखा। ये लोग एक दूसरे के कपडे फाड रहे थे, पत्थर मार रहे थे, एक दूसरे को गालियां दे रहे थे। एक दूसरे के साथ छीना-झपटी कर रहे थे। कोई किसी की नहीं सुनता था। सब लोग अपनी ही बातें कहे जा रहे थे। मैं इस हडकंप को देखकर चकित भी हुआ और कुछ कुछ भयभीत भी। मैं ने डरते डरते एक सफ़ेद टोपी वाले से पूछा। शायद वह कोई नेता था। अरे बाबा, क्या बात है? तुम सब क्यों उतावले से हो गये हो? वह क्रोधित हुआ। उसने मेरे गिरेवान को पकड लिया और कहा, 'तुम्हे क्या इससे ? तुम कौन हो? दिखाई नही देता है। हमें आज़ाद हुये पचास वर्ष हुये। हम आज़ादी मना रहे है। पचास वर्ष तक हम अपरिचित रहे कि हम आज़ाद है। अब जव सरकार ने ढिंढोरा पिटवाया, घोषणा की गई कि हमें

आज़ाद हुये पचास वर्ष हुये, हम जाग गये और आज़ादी मनानी शुरु की। अब हम जो चाहे, सो कर सकते है। कोई हमारे काम में हस्तक्षेप नही कर सकता है। उसने मेरा गला पकड़ कर कहाँ, चलो तुम भी। बहुत प्रयत्न करने के बाद मैं ने अपने आप को उस से बचा लिया। मै ने भी सोच लिया। मैं क्यों इस झमेले में उलझ जाऊं। काटने दो इन्हें एक दूसरे के सर।

त्रेयाबक्की ने मुझे ज़ोर से आवाज़ देकर कहा, तुम क्या जानोगें आज़ादी? तुम तो जन्म जन्मांतर से गुलाम ही रहे हो। तुम्हारी सात पीढ़िया गुलाम थी। तुम वहां भी गुलाम थे और यहाँ भी गुलाम हो। तुम्हारा न कोई नारा है और न ही कोई नेता। चलो अब आगे चलते बनो। मैं फिर उसके पीछे पीछे चल दिया। सड़क के उस पार मैं ने एक बुज़र्ग को किसी नेता की मूर्ति के निकट राष्ट्रीय ध्वज को नंगे शरीर पर ओढ़े बैठा हुए देखा। शायद वह पिछले पचास वर्षों का हिसाब कर रहा था। त्रेयाबक्की ने मुझे फिर संकेत किया और मैं उसके पीछे तेज़ी से चल पडा। हम एक खुले मैदान में पहुँच गये। उस मैदान के दो कोनों में अलग अलग जलसे हो रहे थे। दोनों जलसों में लोग भिन्न-भिन्न रंगों के ध्वज हाथों में लिए ज़ोर ज़ोर से शोर कर रहे थे और नारें दे रहे थे। वोट दो वोट दो। मै ने ताड लिया कि ये निर्वाचन जलसे है। ये नेता लोग फिर एक बार लोगों को मूर्ख बना रहे है। जिस सभा मे ज़्यादा लोग थे, हम वहीं की ओर दौड पडे। मैं ने एक आदमी से पूछा कि यह नेता कौन है? उसने वडे क्रोध से कहा, 'तुम कितने गाफिल हो, लगता है तुम किसी ''मरुस्थल'' से आये हुये हो'। क्या तुम उसे नही पहचानते हो, इसी को कहते है, डाकू भैया। इसी ने साठ खून किये है। राष्ट्रीय पार्टी ने ही टिकट दिया है। इसे अपना कारोबार छोडकर दुबाई से यहाँ आना पडा। इसे इस देश तथा यहां के लोगों में आंतरिक प्रेम है। इस ने अपना सब कारोबार और भोग विलासमय जीवन त्याग दिया। लोगों की सेवा करने का इसे बहुत शौक है। देखते हो ना

कितने सारे लोग इसके साथ है यह ज़रूर जीत जायेगा। यह कहकर इस आदमी ने ज़ोर ज़ोर से नारे देना शुरु किये-डाकू भैया ज़िन्दावाद, डाकू भैया ज़िन्दावाद।

मैं उसे कोई उत्तर न दे सका। मैं सकते में आ गया। चारों ओर अन्धेरा सा छा गया। त्रेयावक्की ने ज़ोर से हंसा। उस के इस तरह हंसने से मैं और ही कांप उठा। मुझे अपना आप वहुत कमज़ोर और लाचार लगने लगा। अपने दार्शनिक विचार मुझे खोखले और निरर्थक दिखाई देने लगे। मुझे आगे चलने के लिये न साहस ही रहा और ने शक्ति। मैं वापसी पाऊं चला आया। त्रेयावक्की फिर से 'ठाह' 'ठाह' करके हंसा और कहा। बस थक गये। इतना ही साहस है। आगे चलोगे नही? मुझ से कोई उत्तर न वन पड़ा और टूटे कदमों वापस चला आया।

मुजाहिद साहब

'द्वदुनाग' सब छोटे बडे, पुरुष, महिलाओं गर्ज़ कि सब मुहल्ले वालों का मिलन स्थान और नदी का किनारा भी था। प्रातः से ही इस स्थान पर लोगों के आने जाने का ताँता बन्धा रहता था। समय जैसे बांट दिया गया था। मुर्गे की बांग के समय पहले महिलायें आकर हाथ मुंह धोकर चली जाती थी, फिर पुरुषों की बारी और तदंतर बच्चे चले आते थे। आप ऐसा न समझिये कि इस चश्मे में पानी के बदले दूध निकल आता था। नहीं, वह बात तो थी नही, अपितु इस चश्मे का पानी इतना स्वादिष्ट और मीठा था कि सब गाँव वाले इसे 'द्वदुनाग' कहा करते थे। इसी चश्मे से गाँव की महिलाएँ पानी के मटके और तसले भर-भर के ले जाती थीं। पर जब से आंतकवादियों ने हडकंप मचाना शुरु किया तब से न पूर्ववत् वहां लोग ही एकत्रित होते और न ही सायंकाल के समय किसी प्रकार की भीड़ ही जमह होजाती। लोग जल्दी ही शाम को घर चले जाते थे और गृह वधुएँ और लड़कियां भी दिन में ही पानी आदि ले जाती थीं।

'द्वदुनाग', मजीद गोर्लॅ के जीवन का एक आवश्यक भाग वन चुका था। लगता था जैसे वह चश्मे का रखवाली है। मुर्गे की भांग के समय वह जागता था और अपने कमरे की खिडकी पर बैटे वह 'द्वदुनाग' के स्नानघर की ओर घूर-घूर कर देखा करता था। प्रभात से पूर्व वह स्नानघर के सुराखों से किस का क्या और कितना देख पाता था, वह वही जानता था, परन्तु उसके मुखपर की मस्ती, उत्साह और हर्ष से साफ दिखता था जैसे उसे करार सा मिल जाता। प्रति दिन की तरह वह आज भी

स्नानघर के अधखुले द्वार से औरतों की अर्धनग्न शरीरों की ध्यान से देख रहा था। एक हाथ से पाजामें के नाडे की जगह कुछ जुंबिशें करता रहा, जब तक उस की मर्दानागी पानी बन कर उस के पाजामें को गीला कर गई। चेहरा पीले चूहे की तरह हुआ, एक अज़ाव से अपने को मुक्त करके कांगडी उठाकर दूधनाग की तरफ चला गया। 'मजीदग्वल' ज्यूँही द्वदुनाग के करीव पहुँच गया, तो सब ने एक दूसरे की ओर देखकर ठाठे मार मार कर हंसना आरम्भ किया। यह तो ऐसे मखौली का मखौल था। मजीदगोलॅ अपने हास्य व्यंग के लिए सारे शहर में प्रसिद्ध था। इस लिये उसे देखकर ही लोग हंसा करते थे। हास्यास्पद होने के अतिरिक्त वह शक्ल से भी जोकर जैसा लगता था। मोटे मोटे गाल होने के कारण ही उसे लोग 'मजीदगोलॅ' कहा करते थे। अपनी ओर से वह बहुत फैशिन करता था। लम्बे बालों को हर दिन सुंगधित तेल मल कर बाहर निकलता था। प्रायः उसका कंगा उसे हाथ में ही हुआ करता था, पर मुख के उस बद्दे- पन को क्या करता। मोटे मोटे गालों ने तो उसके मुख का हुलिया ही बिगाड़ दिया था। लोगों की प्रतिक्रिया भाँप कर वह तैश में आकर कहने लगा -'क्या कहा जाये रात भर सो न सका। रात भर करवटे बदलता रहा। एक व्यक्ति ने व्यंग में कहा, 'क्यों जी क्या स्वास्थ ठीक है। नहीं जी, ये मुजाहिद साहब आये हुये थे। एक आवश्यक मीटिंग थी। मुँह सुकड़ते भौंचढ़ाते हुये दूसरे आदमी ने पूछा, हाँ, वे कोई खास परामर्श लेने के लिए आये हुये होंगे। हाँ, वही बात तो कहने वाला था। कहते थे कि अमीरि जमात मुझ से मिलना चाहते है। इसका इतना ही कहना था कि सब ने धड़ाम से हंसना शुरु किया। मजीदग्वल ने भी ठहाका मारा पर ज्यूँही दूर से ही उसकी नज़र अमकल्लों की ओर पडी तो जैसे उसी क्षण उस पर फ़ालिज गिरा। उसी स्थान पर सिमट सा गया।

ज्यूँ हो अमकल्लो चश्मे पर पहुँच गया वहाँ का सारा वातावरण गम्भीर हो गया। सब स्तब्ध से रह गये। हंसते बोल टिठुर से गए और सब के सब संजीदा प्रवृत्ति वाले दिखाई देने लगे। फेरन के नीचे से दोनों हाथ निकाले और उंगलियों से गुलेल (अंग्रेज़ी V के आकार का) जैसा बनाने लगे। अमकल्लों ने भी गुलेल का आकार दो उंगलियों को बनाया। हम क्या चाहते है सबों ने ज़ोर से चिल्लाया। अमकल्लों सब से सम्बोधित होकर कहने लगा, 'इंशाअल्लाह आज़ादी जल्द ही मिलने वाली है। हम निकट समय में ही एक पृथक आकाश और पृथक सूर्य के नीचे आज़ाद होंगे।' सब ने मिलकर आमीन कहा। अमकल्लों ने फिरन के अन्दर से कांगडी निकाल कर मजीद ग्वल को थमा दी। तुरन्त शोच आदि करके, मुंह हाथ धोकर अपने मुंह को मजीदगोलॅ के फिरन से पूछ डाला। कांगडी फिर वापस ली और चल पडा। इस के निकलने के साथ ही सब ने चैन की सांस ली और फिर मजीदगोलॅ की ओर मुड गये। हां, तुम कुछ कह रहे थे। हाँ हाँ मै कह रहा था ना कि जल्द ही आज़ादी मिलने वाली है। हम ने कल रात कमांडर साहब के साथ विस्तार से परामर्श किया। मुझे यह भी बताया गया कि बडे कमांडर साहब ने आज्ञा जारी की है कि मजीद साहब को तंज़ीम (संस्था) का परामर्श दाता बना दिया जाये। सब ने ज़ोर-ज़ोर से हंसा। भाइयो, देर शाम को दरवाज़े और खिड़कियां खुली रख देनी चाहिए। थके मान्दे रात को घूमते रहते है। उन्हें खाना आदि देना चाहिये। रात को सर छुपाने की जगह भी देना। भाइयो, आप तैयार रहना, हमारे अच्छे दिन निकट भविष्य में आने वाले है। यह रखो मेरी कांगड़ी बाहर और मेरी दौड़ को देख लेना। कांगडी बाहर निकाली पर किसी ने नही ले ली। आख़िरकार नीचे रख दी। सब ने खूब हंसा। क्यों जी मुंह हाथ नहीं धोना है। स्नान आदि भी नहीं करना है क्या? एक ने कहा। क्यों करे स्नान, जब इस के शरीर के लिए स्नान का निमित ही कुछ बन न पाया। मजीदगोलॅ ने

कुछ नहीं कहा। यह उन्हें मालूम तक नही था कि यदि उसे अपनी बीवी है भी नहीं, लोगों की बीवियों को देख कर ही अपने अरमानों को तुष्ट करता है। वह उंगलियों का गुलेल बनाकर वापस घर की ओर चल पडा।

नज़रें ने जाने किस ओर थी। ज्यूँही घर के आंगन में पहुँचा उस का पैर बूढ़े कुत्ते पर पड़ा । कांगडी डर के मारे नीचे गिर गई। क्रोध से बूडे कुत्ते को दो तीन लाते मारी। कुत्ता भौंकते भौंकते दूर एक तरफ चला गया। मजीद को यह कुत्ता सख़्त बुरी तरह आखों में खटकता था। यह दिनभर इन ही के आंगन में पडा रहता था। कभी राख के ढेर पर, कभी शाली घर के नीचे ओर कभी बरामदे पर। ऐसा लगता था जैसे वह भी उस घर का कोई सदस्य था। अपनी तरफ से मजीदगोल उसे दिन में दस-दस बार पत्थर मार-मार कर बाहर निकालने में लगा रहता था पर वह फिर-फिर कर वापस आ जाता था। जैसे उसे वहाँ मांस की हड्‌डी चूसने का आनन्द प्राप्त होता था। मजीदगोल सतों और चाय पी कर खेत की ओर चल पडा। दिनभर बैल जोतता रहा। उसे अमकल्लों की सारी बातें याद आई। आकाश और सूर्य की ओर नज़र करके विचारने लगा, 'अरे, कब देखेंगे वह दूसरा ही आकाश और दूसरा ही सूर्य। कब मिलेगी हमें आज़ादी।' क्या वहाँ भी इसी प्रकार दिनभर परिश्रम करना पडेगा। नहीं नहीं मस्जिद में ज़ोर देकर घोषणा की जाती है कि यह नरक है और वहाँ स्वर्ग। यहां इबलीस है, खुदा साहब है काफिर है जब कि वहाँ खुदा दोस्त। यहाँ झूठ और हराम है, वहाँ सत्य और हलाल है। ऐ खुदा, हमें उस दुनियां को दिखा दे जो हम को इस नरक से आज़ाद करें। मजीदगोल ने बैलों की ज़ोडी को आज़ाद छोड दिया और फिर से बीच वाली दो उगलियों को गुलेल (V का आकार) बनाने लगा। वह कुछ क्षण आकाश को तरफ देखने लगा।

इसी बीच उसे किसी के गुनगुनाने की आवाज़ कानों में सुनाई दी। उसने दूर से दो किसान औरतों को अपने सरों पर टोकरियाँ रखे तेज़ तेज़ चलते देखा। अब वे मजीदगोल के नज़दीक पहुँच गई, तो इन के हिलते सीने के स्तनों को देखकर मजीदगोल के गुलेल से बनायें हाथ स्वयं नीचे पाजामें की नाडे के अन्दर वाले हिस्से की ओर गये। वे सीधे ही चली गई। मजीदगोल भी अब उतावला सा होगया था। वह भी उनके पीछे पीछे ही घर की ओर चला गया।

घर के आंगन में पहुंच कर इसे फिर बूढ़ा कुत्ता सामने मिला। इस ने पत्थर उठाया और उसे दे मारा। कुत्ता भौंकने लगा और वहा से पलायन कर गया। मजीदगोल घर के अन्दर गया। दरवाज़े को अन्दर से चुटकनी की। आगे वडा पत्थर भी रखा। सीधे रसोई के कमरे के अन्दर चला गया। माँ ने खाना तैयार रखा था। खाना खाया। कांगडी ताप ली और अपने कमरे में चला गया। बिस्तरा बिछाया और लेट गया। कांगडी की गर्मी से उसे नींद का सा आनन्द आने लगा। दिन भर के सारे नज़ारे एक-एक कर के याद आने लगें। महिलाओं का स्नानघर, अमकल्लों, नया आकाश और नया सूर्य किसी गीत के गुनगुनाने की आवाज़,बूढा कुत्ता आदि। उसके चहरे पर एक प्रकार की लालिमा सी टपकने लगी। कांगडी को बाहर निकाल कर खिड़की के पास रखा। सोने के लिए रज़ाई को ज्यूँही सर के उपर से लपेटने लगा तो दरवाज़ा खट खट्टाने की आवाज़ सुनाई देने लगी। मजीदगोल का कलेजा धक-धक करने लगा। उसके होंठ सूख गये। वह फिर से बाहर निकला। दरवाज़े पर फिर एक बार खट-खटाने की आवाज़ जैसे आने लगी। मजीदगोल के हाथ पाऊं फिर एक बार काँपने लगे। उसे लगा कि उस के लिये अंतिम घड़ी आ चुकी है जिसका उसे समय समय पर ख़्याल आया करता था। सुबह का वह भाषण और अपनी वीरता का भ्रम उसे अब टूट कर मलद्वार से निकलने लगा। चेहरा पीला

पड़ गया और आखों से आंसू छूटे। हाथ पाऊं सर्द पड गये और टांगों में थर थराहट सी होने लगी। गला सूख गया। फिर से दरवाज़े के खट-खटाने की आवाज़ महसूस होने लगी। उसने अपना गला थोडा अन्दर से गीला किया और ज़ोर से आवाज़ दी।

जिनाव आया। आया जिनाब। मुजाहिद साहब, नीचे आ-हूँ-रहा-जिनाव। जी हाँ जिनाव, नीचे आ रहा हूँ ज़रा सबर कीजिए। पर दरवाज़े का खट-खटाना बन्द नही हुआ। मजीद को लगा, बस यह काया अब समाप्त होने वाली है। सारे सपने और विचार सब टूट गये। दिल की धड़कन तेज़ होने लगी। आखों में जैसे अन्धेरा छागया। सारे मखौल भूल गया। कलाशनकोफ का डर दिल में उतर सा गया। स्वयं अपने लिये अंतिम फ़ातिहा ख़्वानी पढ़ने लगा। मिन्टों में उसे लगा जैसे सारा संसार प्रलय के वबाल में डूब चुका है। टूटी सी टांगों में भय के कारण हरकत सी आ गई। जैसे उसे सीडियों से घसीटा जा रहा था। दरवाज़े की खट-खटाहट भी बड़ती गई और दिल की धड़कने भी। उसे लगा कि अभी अभी उसका हार्टफेल होने वाला है। कुछ भी सूझा नही। यदि दरवाज़ा न खोलता उस का परिणाम भी कुछ और ही भयानक निकलता। सुना था कि यदि कोई दरवाज़ा नही खोलता है उसे ये आंतकवादी दर्दनाक मौत के घाट उतारते है, साथ ही ऐसा दण्ड उसके सगे संबन्धियों को भी दिया जाता है।

अन्दर से हार्टफेल होने का डर और बाहर कलाशनकोफ का भय। मृत्यु सामने दिखाई दे रही थी। मरता क्या न करता। जीवन जीने के लिए हाय-हाय करके दरवाज़े के नज़दीक पहुंच गया। हाथ दोनों ऊपर उठा कर दया की दुहाई देने लगा। मुजाहिद साहब मुझे माफ करना। मै लाचार हूँ, गरीब हूँ। मासूम हूँ। मै ने सर्वदा अपने मज़हब की सेवा की है। किसी का दिल नही तोडा है। मुजाहिद साहब मेरी जान बख्शी करना। मेरे माता पिता रोगग्रस्त है। मैं वह सारी सेवा करूँगा जो मेरे लिए आप

की तरफ से आज्ञा हो। मै आपका नौकर हूँ। आज़ादी की जंग में आपके साथ-साथ हूँ।

दरवाज़े की खटखटाहट उसे सोचने के लिए समय ही नहीं दे पाती थी। थरथराते हाथों से चुटकनी खोली। रखे हुये पत्थर को वडी मुश्किल से एक तरफ किया। आखों से बीनाई चली सी गई थी और टांगों की सकत भी। हाथ पाऊं थरथरा रहे थे। इसी दौरान जब दरवाज़ा खुल गया तो धडाम से वह कुत्ते पर गिर गया। अनायास ज़बान से कह उठा, हाय ! तेरा वेड़ा ग़रक़, क्या तुम ही थे......

जम्मी जानी और लाला सॉब

लगता था सुवह के सात वज चुके थे। लाला साहब 'ठाकुर द्वारे' से अभी अभी पूजा करके निकल चुके थे। सोफे पर वैठकर जन्त्री के पन्ने पलट रहे थे। वैसे भी जन्त्री प्रायः उसके हाथ में ही हुआ करती थी पर आज वडे ध्यान से कुछ ज़्यादा ही देखने में व्यस्त थे। सर्वे ने 'खासू' में चाय ला के पास वाले छोटे मेज़ पर रख दी। उस समय लाल सॉब का ध्यान अपनी ओर आकर्षित करना, उसने उचित नही समझा। इस लिए हाथ से चाय लेने के लिये उन्हें बाध्य भी नही किया। और क्या लाऊं जी, 'लवास' या 'कुलचा', - सर्वे ने पूछा। लाल सॉव बडे क्रोध से बोले, 'फिर तुम्हारा सर। तुम्हें दिखाई नही दे रहा है कि कुलचे खाने के लिए मेरे दान्त नही है। लाव लवासा और टुकडे कर के चाय में डालो। 'सर्वो' अब लाला साहब के क्रोधित व्यवहार का आदी बना चुका था। उसके माथे पर तनिक भी भ्रकुटी नहीं चढ़ाते। चढ़ती भी कैसी, उसे कदापि लाला सॉव सेवक की नज़र से नही देखता। ऐसा लगता था कि वास्तव में वही घर का असली सदस्य है और बाकी नाम के ही हैं।

लाल सॉव ने जन्त्री (तिथि पत्री) अपने दायें तरफ सोफे पर रख दी और रुमाल से चाय का 'खासू' उठाकर पीने लगा, साथ ही सर्वे से जानना चाहा कि क्या जिम्मी और जानी को पीने के लिए दूध और खाने के लिए बिस्कुट दिये। जी हाँ, उन्होंने पी लिया, सर्वे ने कहा। लाला साहब को यह जानकर खुशी हुई। अभी उसने चाय के दो तीन घूँट ही पी लिये थे कि दूरभाष की घन्टी भजने नगी। प्रसन्नता से उस का मन खिल उठा और ज़ोर

से सर्वे को फोन उठाने के लिए कहा। सर्वा अभी चौके से निकल ही रहा था कि जिम्मी ने रिसीवर उठाया और लाल साहव की ओर दौड पडी। वह रिसीवर को मुंह की ओर लगाने वाली ही थी कि लाल साहव ने रिसीवर खिंचकर अपने कान की ओर ले लिया। यह था सॉवजी अमेरीका से। लाला साहब के चेहरे पर चमक सी आ गई। क्यों बटे, कुशल मंगल से होना! हाँ वेटा, मझे तुम्हारे ही फोन के आने की प्रतीक्षा थी। तुम्हें जन्म दिन की वधाई। मै ने समझा, याद भी होगा क्या? तुम लोग तो अंग्रज़ी हिसाव से ही मनाते हो ना। हाँ, क्या मेरी बहू कुशल से है। हाँ, मै भी ठीक हूँ। अव जवानी आयेगी क्या? दिन-दिन कम ही होते जाते है बढ़ते नहीं। नहीं नहीं, किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करना। मै अकेला तो हूँ नहीं। यहाँ तो जिम्मी है जानी है और सर्वानन्द भी। सर्वानन्द ने तॉहर (पीले चावल) बनायी है। अपना नाम सुनकर सर्वा दौड़ते लाला साहब के पास आया। जी, मेरा भी उन से मुवारक कह दीजिये। सर्वानन्द भी आपको बधाई देता है। मिट्ठा ठीक है क्या? अच्छा फोन किया था क्या। अच्छा अच्छा, जीते रहो, स्वस्थ रहो। प्रभु आप को शत-शत वर्ष की आयु दे। अच्छा मैं अब रिसीवर नीचे रख देता हूँ। लाला साहब ने फोन नीचे रखा और कुछ सोंचने लगा। आखों से ऐनक उठा ली और आँखे पोंछता रहा। शायद आखें गीली हो गई थी।

लाला साहब जन्त्री की ओर कुछ समय के लिए निरंतर देखते रहे। फिर एक बार जन्त्री हाथ में उठाई और पन्ने पलटने लगे। सावन शुक्ल पक्ष अष्टमी सन् 1960 आज से पूरे उन्नतालीस वर्ष पूर्व। वह दिन लाला साहब के लिए कितना महत्त्वपूर्ण था। विवाह होने के पूरे पन्द्रह वर्ष बाद उसके हाँ सॉबा जी ने जन्म लिया था। किस धूम-धाम से उस ने वह दिन मनाया था। सारे घर में चराग़ान किया गया था। मुहल्ले तथा बाज़ार वालों को खाने के लिए निमंत्रण दिया गया था। लाला साहब का स्वर्गवासी पिता एक बहुत बड़ा व्यापारी था। धन सम्पत्ति तो बहुत थी।

लाला साहब उसकी इकलौती संतान थी। लाड प्यार के कारण घर में सब उसे लाला लाल के नाम से पुकारते थे। नौकर चाकर बडे आदर से लाला साहब कहा करते थे। इस प्रकार लाला बाल्य-काल में ही लाला साहब कहे जाने लगे। अल्पआयु में ही उसकी शादी रचाई गई पर बहुत समय तक उसके हां किसी बच्चे ने जन्म नही लिया। बच्चे के खातिर सारा घर परेशान था। वे पीरों, फकीरों, साधु- सन्तों, अस्थापनों और मंदिरों पर बच्चे के लिये मिन्नते मांगते थे। यही अरमान लेकर इन के पिता स्वर्ग सिधारे।

प्रभु की करणी भी कैसी निराली होती है। लाला साहब की पत्नी गर्भवती रही। जब वे सावन अष्टमी के दिन तुलमुला (क्षीर भवानी) गये थे, तो उसे वही प्रसवपीड़ा सी होने लगी। लाला साहब ने उसे टैक्सी में शहर लाया और उसने उसी दिन सायं काल को हेडो (Hydo) अस्पताल में बच्चे को जन्म दिया। सॉवा जी के जन्म के बात फिर आगे बात बनती गई। बराबर एक ही वर्ष बाद लीला वती से सिम्मी पैदा हुई। सॉब लाला और जिम्मी जी को माता- पिता अपार प्यार किया करते थे। एक-एक करके अपनी गोद में लिया करते थे। ऐसे जैसे दूध में पाला जा रहा था। वर्ष बीतते गये। अच्छे दिन जैसे जल्दी बीत जाते है और बुरे दिन लम्बे होते जाते है। यह उनकी समझ में भी न आ सका कि किस प्रकार सॉबाजी और सिम्मी बड़े हुये, पढ़ा-लिखा और किस तरह उन की गोद से दूर होते गये। जैसे समय को पंख लगे हुये थे। इस प्रकार इन बच्चों की पढ़ाई भी बड़े ध्यान से हुई।

सॉब जी ने आई.आई.एम अहमदाबाद से मैनूइजमेन्ट में डिग्री ले ली। लाला साहब का विचार था कि पांपोर के करेवे पर एक लोहे का कारखाना खोला जाये, जहाँ सॉवाजी भी घर के नज़दीक ही रहेगा। उसे यह मालूम न था कि भाग्य को कुछ और ही बात स्वीकार है। अपनी पढ़ाई के दौरान ही टाटा कम्पनी वालों ने सॉबा जी का चयन किया, इसलिए उसका दिल भी उसी

ओर आकर्षित हुआ। ज्यूँही पढ़ाई पूरी की फिर उसकी पहली पोसटिंग दिल्ली में ही हुई और साथ ही कम्पनी की तरफ से ही उसे एक वर्ष के लिये अमेरीका भेज दिया गया। चलो ठीक है, एक वर्ष तो यूँ ही निकल जायेगा, लाला साहब ने सोच लिया। परन्तु ऐसा न हो पाया। सॉबा जी ने वहां कुछ और भी प्रयत्न करके, यहाँ वाली नौकरी छोड़ कर वहीं किसी बड़ी कम्पनी में काम करने लगे। साथ ही वहां किसी 'मीम' से शादी भी की। 'मीम' बहू का विचार आते ही लाला साहब ने एक लम्बी सांस ली और जिम्मी की ओर देखने लगा। 'मीम' बहू ने प्रज़ेन्ट के रूप में 'जिम्मी' लाला साहब की दे दी थी। जब शादी के बाद सॉबाजी ने मीम को घर लाया था तो उस समय जिम्मी भी उन के साथ थी, जिसे उस ने जर्मनी से मंगवाया था। वापस निकलते समय उसने अपने सुसुर के हवाले की थी। तब से जिम्मी लाला साहब के पास ही थी।

लाला साहब को एक बाबाजी की बात याद आई। सॉबा जी का हाथ देखते हुये उसने कहा था, 'पंडित जी, आप का बेटा सात समुद्र पार जायेगा। बहुत भाग्यवान होगा। जीवन सुखद होगा।

जैसे तैसे पति-पत्नी ने सॉबा की घर से दूरी को सहन किया पर जब सिम्मी भी डाक्टरी पढ़कर एक अफरीकी लड़के के साथ फरार हुई तो यह लोग अपमानित महसूस करने लगे। बाहर निकलने के लायक भी न रहे। लोगों ने ताने दे दे कर इनकी ईंट से ईंट बजा दी। लोगों ने कहा कि सिम्मी ने कालेज में ही उस हबशी लड़के से रिश्ता जोड़ा था और आगे पढ़ने के बहाने पहले लन्दन गई और फिर अफरीका। जाने उस काले-कलूटे में क्या नज़र आया और उसके शरीर का कौन सा अंग उसे अच्छा लगा। यह बात समझ में नहीं आई। इसी को कहते है पत्थर से दिल लग जाना। यह अपनी अपनी बराबरी है। अगर उसे हबशी ही अच्छा लगा तो इस में दूसरा क्या कर सकता था।

वेचारी लीलावती तो यह सदमा सहन नही कर पाई। पहले रोते रोते आँखों की ज्योति से वंचित हुई, फिर एक दिन अकस्मात हार्टफेल हुआ ओर मर गई। पश्चाताप के लिए लाला साहव अकेले ही रह गये।

जव वार वार सॉवा जी ने वुलावा भेजा, तो उसे वच्चों के पास जाने के विना कोई रास्ता नहीं सूझा। परन्तु जो तीर उसे लग चुका था वह आज तक भी चुभा ही रहा। पर कितने समय तक, वस केवल एक वर्ष तक। दिन बर दीवारों की ओर देखता था। न किसी से वातचीत, न कहीं आना न कहीं जाना। उसे अपना अस्तित्व जैसे किसी कारागार में दिखाई देने लगा। सव अपने अपने कारोवार पर चले जाते थे और लाला साहव जिम्मी के साथ घर की ओर रखवाली करता। फिर जव सॉवाजी ने उसे सिमी के पास 'जाने' के लिये वहुत विवश किया तो वहां उसके पति ने उसे जानी दिया। साथ ही यह भी कहा कि यह अफरीका की प्रसिद्ध नस्ल है। जिम्मी भी अकेलापन महसूस नही करेगी। फिर लाला सॉहव भी इन के साथ रह कर व्यस्त रहेंगे।

उस दिन से लेकर आज तक लाला साहव कदापि बच्चों के पास नही गया। अव हाल चाल मालूम करने का एक ही साधन था, वो था दूरभाष। सप्ताह में दो बार फोन पर बेटा बात करता था और कभी बेटी।

लाला साहव का मन व्यथित सा हुआ। उसने कारोबार बन्द किया और दुनिया दारी से भी नाता तोड़ दिया। अव भगवत् नाम ही भजने लगा। साधु सन्तो की संगति में ही प्रायः रहने लगा। कभी इश्बॉर (निशात), कभी हारी पर्वत और कभी तुला मुला। पर दिन गुज़रने तक शाम को वापस घर पर ही जिम्मी और जानी के साथ अपने मन की बोझलता को दूर करता। जहाँ भी वह जाता जिम्मी और जानी उसके पीछे पीछे ही चले जाते थे। यारबल (नहाने और बर्तन आदि धोने का स्थान) ज़ाना हो या वाग में, वे पीछे पीछे ही चले आते थे। लोग उसकी

निन्दा करते। कहा करते थे कि कहीं ये पूर्व जन्म में इस के बच्चे रहे होंगे या नज़दीक के रिश्तेदार। लोग किसी को कुछ न कुछ कहे विना वख़्शते है? खैर, जिसे जो कुछ भी आता, कह जाता था, पर लाला साहब ने जीवन का सार पा लिया था। वह भगवान नाम में लीन हो चुका था। प्रातः और सायं को टाकुरगृह में ही घंटों बैठा करता।

आज उसे सॉबा जी के फोन आने की आशंका थी। उसका जन्मदिन वह कैसे भूल जाता, इसी लिए 'टाकुर कक्ष' से जल्द ही निकला था। सॉबाजी के साथ अब जो बातचीत हुई तो उसे आनन्द सा आया। जिम्मी और जानी कालीन पर बैठे उस की ओर नज़रे जमाये हुये बैठे थे। शायद उसे बाहर बाग में जाने का संकेत कर रहे थे। इन दोंनों को देखते हुये वह सोचता था कि यह मनुष्य भी किस घटिया फ़ितरत (स्वभाव) का बना हुआ है, न इसे किसी का लिहाज़ बाकी रहा है और न किसी के लिए प्रेम या सहानुभूति। केवल अपना आप, अपना स्वार्थ और अपना जीवन। आज का खून जैसे पानी में परिवर्तित हुआ है। मनुष्य से ये जानवर हज़ार गुना वेहतर है। वह अन्दर ही अन्दर सोच रहा था कि जैसे इन्हें रहने के लिए कहा जाये वैसे रहते है। जिस ओर उठने बैठने को समझाया जाये, वैसा समझ जाते है। बस, पीछा ही करते रहते है। यदि इन्हें एक दरवाज़े से निकाला जाये तो दूसरे द्वार से वापस चले आते है। लिहाज़ भी है और जानना मानना भी। जिसे एक बार पहचान लेते है उसे सदा के लिए याद रखते है। यदि लाला साहब कभी कुछ कह देता, तो क्या मजाल कि जानी ऊपर सर उठाता। इन्सानों की तरह नहीं कि अभी बडों ने कुछ चीज़ हाथ में ली कि छोटे झपट पड़ते।

हाय, क्या हुआ इस मनुष्य को, लाला साहब ने ज़ोर से आवाज़ दी। ज़ोर की आवाज़ सुनकर सर्वा स्नान ग्रह से तुरन्त निकल आया। क्या महाराज, लाला साहब, क्या बात हुई है। क्या कह रहे थे आप ! क्या आप अभी यही है, बाग में गये नहीं

क्या ! सवें के इस प्रश्न को सुनकर लाला साहब कुछ जाग सा गया। उस ने होश सम्वाला। हाय, कुछ नही। हाँ, निकल रहा हूँ। लाला साहब बाग की ओर चल पडा और उसके पीछे जिम्मी और जानी भी......

पर्वत के उस पार का सपना

चिल्ल:कलाँ (चालीस दिन की समयार्वाध कश्मीर में भंयकर शीत के दिन) अपने जोबन पर था। सर्द और टंडी हवा से मेरे दान्त टकटका रहे थे, हाथ पैर सन्न होचुके थे, कान सन्न और लाल हो गये थे, बाहें और टांगे थर थरा रही थी और बालों में ......। चिल्लेकलान और कोहरा मुझे एक आंख नहीं भाता था। आलस्य और निश्चेष्टता सारे शरीर को शक्ति हीन बना देती है।

कमरे की अन्दर वाली खाली छत को देखकर मैं प्राय: सोचता था कि यदि में अवाबील होता तो सर्दियों में कश्मीर से बाहर गर्म इलाकों में गुज़र बसर करता और फिर बसंत आते ही वापस घर पहुँचता। पर बसंत तथा ग्रीष्म का मौसम इस इच्छा को मेरे मन से निकाल बाहर करता और मुझे कश्मीर का मूल निवासी होने पर गर्व महसूस होता। हर प्रातः काल के समय 'विश्व' नदी का सर्द तथा ठंटा पानी देखकर मुझे टिठुरन सी महसूस होती थी पर हर शाम दसी पानी की आवाज़ मुझे जैसे पालने में लिटा कर गहरी नींद सुला देती।

पता नहीं आज क्यों विचित्र से विचार मेरे मन में आ रहे थे। गाँव की बावली के किनारे पर बैठ मै सोंच रहा था कि क्या में फेरन के नीचे से हाथ निकाल कर मुंह हाथ धो डालों या ऐसे ही बिना कुछ कहे घर वापस चला जाऊं। मन करता कि कोई भागवान भक्त यहाँ से गुज़रता ताकि मै उस की कांगड़ी से अपने आप को गर्म करता। तनिक ग़र्मी महसूस होती।

अनायास ही ऐसा हुआ। वहां से मेरे मित्र रशीद, जल्ला और सिकन्दर आ निकले। जल्ले ने फेरन से कांगडी निकाली।

मुझे लगा कि यह मुझे ही देने वाला है। मैं ने हाथ पसारा कांगडी को लेने का प्रयत्न किया। ज्यूँ ही मैं ने इसे छुआ तो जल्ले ने ज़ोर से चिल्लाना शुरु किया। पकड़ो? पकड़ो इस ''दालि वट्टा'' (दालि वट्टा कश्मीरी पंड़ित के लिए अनादरित नाम) को। इसकी दो टांगे तोड डालेंगे। इसे काट डालेंगे। उन की आखों में वह अपना-पन और नम्रता नहीं थी, जिस का मैं अभयस्त था। उन की आँखों में क्रोध और घृणा उसी प्रकार थी जैसे वे ख़ूनी बन चुके थे। मेरा रोम-रोम दहल गया। अब कांगड़ी पकड़ने की बात ही नहीं थी। मेरे कांपते हाथों से धड़ाम से कांगड़ी नीचे गिर गई। मैं आखें वन्द कर के तेज़ दौडा। पर ये भी मेरे पीछे-पीछे खूँखार शेर की तरह गालियाँ देते देते दौड पड़े। मैं हिरण की तरह तेज़ दौडा जा रहा था। मरता क्या न करता, जी बचाने के लिए ऊवड़-खाबड़, ऊपर नीचे, पानी ख़ुश्की कुछ भी दिखाई नहीं देता। मैं उन गलियों, मुहल्लों आंगनों, मैदानों और पुष्प वाटिकाओं से दौडता रहा, जहाँ हम चारों बचपन में खूब टहलते, गुली डंडा, लुका-छिपी, कब्वडी, सात खानों जैसी खेले खेलते। मैं उन स्थानों पर रुक सा जाता था जहाँ मेरा बचपन इन के साथ व्यतीत हुआ था। वे पुराने स्मरणीय दिन मेरे मस्तिष्क को आ घेरते थे। मैं क्यारियों की तरह स्वयं मिट भी जाता था। मै चकित सा रह जाता कि हे प्रभु बचपन में एक साथ खेलने वाले मित्र किस प्रकार मेरे शत्रु बनकर मुझे ही मारने वाले बने। यह कैसा प्रलय हुआ जा रहा है इस जगत में। हालात क्योंकर इस तरह बदल गये। ज्यूँ ही मैं इन बातों को ध्यान में लाकर पुरानी यादों में खोजाता था, वे मेरी ओर ऊंची आवाज़ में पुकारते और मेरी सारी सोच सकते में आ जाती थी। जान के मारे मैं रुक नहीं पा सकता था। लगता था जैसे अभी अभी मुझे पकड़ कर मार दिया जायेगा।

अब मुझे सर्दी का आभास कैसे होता। मेरे अन्दर का ख़ून गर्म हो चुका था, शीतल बदन तपता रहा, दिल की धडकने

बड़ने लगी पर ऐसा अनुभव करने का समय ही कहाँ था। मौसम का अहसास मुझ से छिन्न गया। केवल एक ही गम मन में था कि अपनी जान बख़्शी किस से मांगो और देगा कौन। कुछ मिन्टों में ही कपसमर्ग पहुंच गया। मेरी सांसें तेज़ी से फूल रही थी। मैं स्वयं नीचे गिर गया। कपसमर्ग तूत के पेडों से भरा एक विशाल मैदान था जहाँ हम बचपन में प्रायः आया करते थे। रशीद को शहतूत खाने का बड़ा शोक था। वह होंठों और हाथों पर इस प्रकार तूत का रस डालता था जैसे किसी राक्षस ने किसी का ख़ून चूस लिया हो। मैं उसे चिढ़ाता था कि तुम पिछले जन्म में राक्षस रहे होंगे। इस बात से वह तिलमिला उठता, बहुत नाराज़ हो जाता और बिदक कर हमारे पीछे दौड़ पड़ता। कहता था, 'मैं भूत हों, मार डालूँगा और फिर ख़ून पियूँगा।' हम हंस लेते थे और फिर भय समाप्त हो जाता था। मैं इन ही ख़्यालों में खो चुका था कि तुरन्त वे तीनों यमदूतों की तरह मरे सामने खडे हुये। इन तीनों का चेहरा देखकर में विस्मृत हुआ। इन की शक्ल ही जैसे बदल चुकी थी। सरों पर सींग, हाथी की तरह दांत बाहर निकाले हुये, बनमानस की तरह हाथों के ऊपर लम्बे-लम्बे बाल, चुड़ैल की भाँति पेर पीछे की ओर, मुंह और सारा चेहरा ख़ून से भरा हुआ था। मै कांप गया। आओ सामने, मैं खा जाओंगा, खून पियूँ गा। मैं भूत हूँ, क्या पहचाना तू ने मुझे। मै मुर्गे के चूज़े की तरह सिमट गया। मै ज़ोर से चिल्लाने लगा, माँ, मुझे मार डाला इन्होंने। मै हाथ जोड कर इन से जान बख़्शी के लिये प्रार्थना कर रहा था। अरे, तुम तो मेरे बचपन के मित्र तो हो, साथ साथ खेलने वाले, सहपाठी, फिर तुम यह क्या कर रहे हो? क्या तुम सहन कर सकोंगे मुझे मारना? तुम क्या पशु प्रवृति के हो ? घर वाले तुम्हे डाटेगें तो नही ? वे एक साथ एक ही आवाज़ में बोलने लगे। वे कौन घरवाले और किसके घरवाले। न हम किसी के है और न हमारा। न हमारे माता'पिता है और न ही भाई बहिन। वे हम ने कब के मार डाले। अब तुम्हारे साथ

किसी प्रकार के सम्बंध की तो बात ही नहीं। कहाँ बचपन और कहाँ वे सहयोगी और मित्र। हमारा एक ही सम्बंध है और एक ही लक्ष्य - वह है आज़ादी। हम बावले हो चुके है। हमें इसी का जनून है। मैं ने कहा कि मुझे मारकर तुम्हें कौन सी आज़ादी प्राप्त होने वाली है। फिर तो वह आज़ादी मैं ने कही मुट्ठी में बन्द की हुई है क्या। चलो मैं भी तुम्हारे साथ आज़ादी ढूँढने निकल जाऊंगा। नहीं, नहीं तुम मुख़बिर हो हम तुम को आज ही समाप्त करेंगें। चलिये इसे कमांडर साहब के पास लिये चलते है। वह स्वयं इस की ईंट से ईंट बजायेगा।

इन्होंने आखों पर पट्टी बांध ली और खूब पिटाई करके कम से कम चार किलोमीटर दूर ले गये। वहां धड़ाम से नीचे गिरा दिया। आखों की पट्टी खोल दी गई। ज्यूँही मैं ने आखें खोली, मंझे एक अंधेरा कमरा दिखाई दिया। इस में मुझे बहुत शोर सुनाई दे रहा था। इर्द-गिर्द कम से कम बीस लोग एक पंक्ति में बन्दूक लिये खडे थे। रशीद, जल्ला और सिकन्दर भी एक तरफ खडे थे। मैं देखते ही स्तब्ध सा रह गया। अन्दर की सांस अन्दर ही रह गई। इसी बीच वहां से ज़ोर ज़ोर से चलने की आवाज़ आई। सारा शोर एक दम बन्द हुआ। सब ने अपने सर झुकायें। उसी क्षण एक लम्बे कद का आदमी आया और मेरे सामने वाली ऊंची कुर्सी पर बैठ गया। इसके चारों ओर करीब चार आदमी बन्दूके लिए खडे हुये। कमरे में उसी क्षण बिजली जगादी गई। मैं ने इस आदमी के चेहरे की ओर देखा। मेरे पैरों की ज़मीन जैसे खिसक गई। मैं चकित रह गया। अरे, क्या यह सलाम डगा इन सब का कमांडर है। सलाम डगा आहसन जू का इकलौता बेटा था। वह आवारागर्दी के कारण न लिखने-पढ़ने में रुचि रखता था और न ही किसी काम काज में उस का दिल लगता था। वह पूरी तरह एक आवारा लड़का था। दिन भर कुत्तों के पीछे दौड़ा फिरता था। गलियों में आवारागर्दी करता और चोरियां भी। मुहल्ले में जब भी कोई झगडा आदि हुआ

करता था, निश्चय ही उस में इसका हाथ होता। जहां भी कोई अपराध होता या दुर्घटना होती तो इसी की खूब पिटाई की जाती। कोई भी माता पिता अपने बच्चों को इसके साथ घूमने फिरने नही देता। यह मुहल्ले का वदनाम लड़का था। उस के माता पिता भी इसी बहाने इस दुनिया से कूच कर गये थे। उस ने अपने बाप की पगडी बहुत उछाली थी। सच ही तो इसे उलटा समय कहा जा सकता है। जल्ला, रशीद तथा सिकन्दर जैसे अच्छे परिवारों से संबंध रखने वाले भी इस समय उसी के अधीन थे।

यह सोंचते सोंचते मै तीन और तेरह में भटकता रहा कि उसी क्षण किसी ने मुझे पीछे से बन्दूक के बट्ट से दे मारा। मुझे झटका सा लगा और थोडा सा होश सम्भाला। कमांडर ने कहा, 'इस का क्या दोष है।' जल्ला ने जवाब दिया, 'जनाव यह बहुत समय से हमारे ख़िलाफ मुखबरी कर रहा है।' हमारी इस तहरीक को कमज़ोर बनाने का प्रयत्न कर रहा है। आज भी प्रातः ही उठकर नदी के किनारे कोई योजना बना रहा था। हम ने इसे उसी समय पकड़ लिया और आप के पास लाया ताकि आप स्वयं इसे अपने हाथों से दण्ड दे सकोगे। शाबाश, शाबाश, ऐसे देश द्रोहियों को ऐसा दण्ड दिया जाये तकि बाकी सब कांप उठे। इसे कमरे की छत पर उलटा करके लटकाओ, जलते मिर्चो का धुआँ नीचे रख दो, नाख़ून बाहर निकालों ताकि सारे छुपाये हुये रहस्य बाहर निकल सकें। फिर गोलियों से इसका शरीर छलनी करके इसे पांचाल के कौओं गिद्धों के भोजन आदि के लिये किसी चोराहे पर फेंक दो।

अपनी ओर से मैं ने ज़ोर-ज़ोर से चिल्लाया कि जनाब में निर्दोष हूँ, ये झूठ कह रहे है, पर मेरी बात किसी एक ने भी न सुनी। वे मुझे दूसरे कमरे में लेगयें। डर के मारे अव मेरी ज़बान भी हकलागई। हाथ पाऊं ठिठुर चुकें थे। सीने की सब धड़कन समाप्त हो चुकी थी। आखें एक छोटे से भेड़ के बच्चे की तरह

खुली तो थी पर उन की ज्योति चली गई थी। सारा शरीर ठंडा पड़ चुका था। संभवतः यह मेरे लिए जीवन की अंतिम घड़ी थी। इन्होंने मेरी दोनों टांगों को एक मोटी रस्सी से बांध लिया और उलटे मुंह कमरे के छत से नीचे उलटा दिया। ज्यूँही जले मिर्चो का दुआँ मुझे लगा, मुझ में कुछ-कुछ होश सा आने लगा। मैं ने चिल्लाना और विलाप करना आरम्भ किया। दो आदिमियों ने मेरे दोनों हाथ पकड लिए और लगे मेरे नाख़ूनों को खींचने। ज्यूँही उन्होंने ज़ोर से मेरे नाखूनों को निकालना शुरु किया, मै ने चिल्लाया। 'हाय माँ, मुझे इन्होंने मारा। मै एक दम से बिस्तर से उठ खडा हुआ।

माँ भी जाग गई और मुझे ज़ोर से गले लगाया। मैं तेरे सदक़े जाऊं, अपना आप अर्पण करूँ। क्या आज भी तुम पहाड के उस पार का सपना देख रहे थे।

तुम्हें भूला नहीं हूँ

वह दुःखदग्ध शाम मैं कदापि नहीं भूल पाऊंगा। हम खाना खा रहे थे। टी.वी. चल रहा था। समाचार आरम्भ हुए और पहली ही प्रमुख ख़बर दिल को चीर कर गई। मेरा हाथ खाने की थाली में ही रह गया और में पूरी तरह स्तब्ध। लसा कौल, निदेशक दूर दर्शन केन्द्र श्रीनगर, को अपने ही घर के बाहर शहीद किया गया था।

आँखों में अन्धेरा छा गया। सारी दुनियां जैसे सर पर टूट पडी। कुछ समय के लिए अवाक् रह गया। हम दोनों पति-पत्नी एक दूसरे की ओर हिरणों की भांति देखते रह गए। मुझे इस ख़बर पर विश्वास ही नही हुआ। मुझे लगा जैसे समाचार वाचक से त्रुटि हुई हो। लासा कौल को कौन मार सकता है और क्यों? उस जैसे प्रभाव शाली व्यक्तित्व वाले, हंस मुख और परोपकारी मनुष्य को गोली मारकर क्यों कोई मारे?

मेरी नज़रों में वैसा कोई पत्थर दिल क्रूर, बद दिमाग इन्सान कोई न था जो वैसा जघन्य अपराध करता। हाँ, तुम ने तो सदा ही सब के साथ भला किया था। तुम तो हमेशा दलितों पर दया करते रहे हो। तुम्हें तो सब का आशीर्वाद साथ था। सब से ज़्यादा तुम्हें अपने माता-पिता का साधुवाद साथ था। उन्होंने आपके लिए 'रुम ऋषी' की धीर्ग आयु की कामना की थी। इसी कारण तुम्हारा नाम लस (जीते रहो) नाम रखा था। तुम तो उन के सात बच्चों में से उत्पन्न केवल एक मात्र जीवित थे। नहीं, नहीं, एक आँख का तारा अस्त नही हो सकता है। परमात्मा इतना अन्याय नहीं होने देंगे। यह सत्य नहीं हो सकता है। यह

केवल एक भ्रम है। पर मुझे इस बात का भी एहसास था कि बुरी ख़बर सदा सत्य हुआ करती है। मैं तीन-तरह में भट गया। रात का अन्धेरा अपने ऊपर ज़्यादा ही गहराता जाने लगा। निशा लम्बी होती गई और प्रातः काल जैसे कोसों दूर दिखने लगा। तुम्हारे सारे विचार मेरी छाती पर उतर कर कुरेदने लगे। तुम्हारा मधुरिमा पूर्ण यौवन, ज़िन्दादिली, साहसमयी शरीर, ये सारी योग्यताएँ रातभर मुझे अन्दर ही अन्दर काटती जा रही थी।

क्या तुम्हे याद है। मुझे अब भी याद है। 31 मई 1977, सुबह के दस बच चुके थे, जब मैं रडियो कश्मीर के इहाते में दाखिल हुआ। तुम ही तो थे जो मुझे सब से पहले मिले। तुम्हारा खिला-खिला सा लाल-लाल चेहरा, सुनहरे बाल, खानेदार कमीज़ और काली पतलून मेरी आँखों के सामने आज भी दिखाई दे रहे हैं। इस से पहले कि मै नमस्कार करता, तुम ने ज़ोर से पुकारा, क्यों रूप जी, जाइन करना है ना? तुम ही मुझे एक दम कार्यवाहक अधिकारी के पास अन्दर ले गये और जाइन करवाया। फिर उसी दिन मुझे कार्यवाहक अधिकारी केन्द्र निदेशक के पास ले गये। तुम सब कार्यक्रम अधिकारी मीटिग में बैठे हुये थे। मै आप के साथ वाली खाली कुर्सी पर बैठ गया। तुम ने खुद ही चपरासी को बुलाया था और कहा था, 'भाई, चाय ले आओ, आज की चाय रूप जी की तरफ से होगी।' मैं ने चकित सा रह कर कहा था, कौल साहब क्या कर रहे है आप। आज तो मेरा पहला ही दिन है, चाय आप को ही पिलानी चाहिए। तुम ने हंसते हंसते जवाब दिया था, यह तो भैया, रेडियो कश्मीर है, यहां तो उलटी गंगा बहती है।

मेरी पोसटिंग हुई और मैं तुम्हारे नज़दीक युवावाणी में आया। मुझे निकट से तुम्हें जानने का अवसर प्राप्त हुआ। तुम्हारे उच्च चरित्र, व्यक्तित्व, विद्वता और प्रशासनिक गुणों ने मुझ पर ऐसी छाप डाली कि मै तुम्हारा प्रशंसक बन गया। रेडियों से तुम्हारा कितना नज़दीकी रिश्ता था। ऐसा लगता था जैसे तुम्हारे

माँ-बाप, बच्चे पत्नी सब कुछ रेडियो कश्मीर ही है। टॉटी ठीक कहती थी। रेडियो वालों का घर परिवार नहीं होना चाहिए। समय बीतता गया और मैं ने रेडियों की नौकरी छोड दी। तुम आगे ही आगे प्रगति करते गये। चुनौती भरे कन्द्रों को तुम ने सँभाला। केवल शारीरिक रूप में हम एक दूसरे से दूर होते गए, पर हमारे सम्बंध दिन प्रति दिन घनिष्ठ होते गये। तुम्हारे हर एक डेरे और कार्यालय पर मै पहुंच गया पर तुम्हारे अंतिम पडाव तक पहुंचने में मुझे देरी लगी। किन आकांक्षाओं को समेटे तुम ने बेमिना में मकान बनवाया था। पर किस लिए? सम्भवतः इसी मनहूस दिन के लिए .....

रातभर कैसे-कैसे विचार मेरे मन में उभरते रहे। जैसे-तैसे रात गुज़र गई। पर उषा भी कुछ निराली सी लग रही थी। इस में रात का अन्धेरा अभी छाया ही हुआ था। अख़बार में तुम्हारी तस्वीर कल के समाचार का प्रमाण प्रकट कर रही थी। अब सब भ्रम टूट गया। सच्चाई की कड़वाहट साफ दिखाई देने लगी। एक आँख का तारा अस्त हो चुका था। दुल्हन का सुहाग लुट चुका था। बच्चों का पापा और मित्रों का मित्र उन ने जुदा हो चुका था।

आज यह बात सात वर्ष पुरानी हो चुकी है। 13 फरवरी 1990 का दिन मेरे कलेजे को तेज़ नोक वाले कील की तरह चुभ के रह गया। इन वर्षो में इस गंभीर घटना पर कितनी टिप्पणियाँ हुई। तबसरे हुये, विचार प्रकट किये गए। नये नये कदम उठाये गये, खबरें छपी पर तारे अस्त होते गए। एक एक हादिसा होता गया। परिवारों के परिवार उझडते गए। तुम्हारी तरह न जाने कितने युवकों को यौवन काल में ही मौत के घाट उतारा गया। लोग ख़ानाबदोश होते गए। घर उजड़ गए, रिश्तों ने दूरियां पकड ली। अपना-पन छूट गया। कहर टूट पड़ा। हालात बदलेते गए। रोटी की तलाश के लिए कुछ इधर और कुछ उधर भटक गए। समय ने क्या क्या रंग दिखाये। जो सोचा तक भी नही था, वही

हुआ। अनजानी राहों पर चलना पडा। अवांछित मौसमों को सहन करना पडा। इस भयंकर त्रासदी पर भी कुछ लोगों ने उंगलियाँ उठाई। कहने लगे कश्मीरी पंडित (भट्टा) स्वयं चले गए। इन को जगमोहन ने निकाला। कितना सनोगे, क्या क्या हुआ। कितना कुछ सहन करना पडा।

जो मरा उसकी जवानी चली गई। जो जीवित रहा वह कराह रहा है। आँसू बहाना, आहें भरना। खाना तो सब खाते है टाठीं भी खाती है, ज़िन्दा लाशों की तरह इधर उधर घूमते फिरते है। तुम्हारे माता पिता की सेवा आख़िरी दम तक की। कौन सा दुभार्गय लाये थे अपने साथ जिस लिए दीर्ध आयु की इच्छा की थी उसी के लिए विलख विलख कर रोना पडा। जिसे सदक़े जाती भी वही......

आखिर कब तक जीवित रहते। टूट गये, विखर गये और फिर अंतिम सांस लेकर अपने अंतिम रास्ते पर चले गये। विट्टी और नीगो ने अपना बाल्यकाल एक दम से पीछे छोडा। बचपन मे ही सब कुछ सहन करना पडा। विट्टी ने तुम्हारा ही व्यवसाय (कार्य) अपनाया है। तुम ने बहुत कुछ अधूरा छोडा था ना। वह अब उसे पूरा करेंगी। नीगो बस तुम्हारा ही पर्याय है। पर कहाँ तुम्हारा खिलखिलाता सांवला बदन। वह मुस्कराना तक भूल गया है। बाकी सब लोग अपनी अपनी उलझनों में व्यस्त हैं। भगोड़े नेताओं की फिर से ताजपोशी की गयी। ख़ूनी और अपराधियों को फिर से छोड दिया गया। बुद्धिजीवियों ने सांपों को दूध पिलाया और इसी तरह नई राजनीति अमल में लाई गई।

सब यही कहते हैं कि कश्मीरी पंडितों को फिर घसीट कर वापस कश्मीर ले जायेंगे। आगे का इतिहास भी रचना है ना ! कितना कहूँ और तुम कितना सुन लोगे। तुम तो सोंचते होंगे कि इस दुनियाँ में आकर भी यह चैन से रहने देता नहीं, पर बात यह है कि तुम मेरे परम मित्र भी हो, राज़दार भी, पथ प्रदर्शक भी, बड़े भाई भी। अब तुम बहुत समय से मिले भी नहीं। मेरा

कलेजा मुँह को आया था, बहुत समय से हम ने वातें भी नहीं की थी।

पर उस समय और आज के समय में काफ़ी अन्तर है। पहले तुम केवल कान खोल कर सुनते ही नहीं थे अपितु स्वयं भी कहते रहते थे। कुछ अपनी, कुछ कार्यालय की और कुछ इध ार-उधर की। ख़ैर, मत कहो बेवफ़ा। फिर भी मैं तुम्हें तंग करता रहूँ गा। मैं तुम्हें कभी भी भुला नहीं दूँगा, तुम्हारी यादें नहीं जाती है मुझ से।

साहब

इंडिया इन्टरनैशनल सेन्टर (भारत-अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र) का सभागार लोगों से खचा-खच भरा हुआ था। दिल्ली के इस स्थान पर किसी भी कार्यक्रम को आयोजित करने का अर्थ यह था कि यह कार्यक्रम रचने वाले तथा इस में भाग लेने वाले दोनों पक्षों के लोग उच्च कोटि के विचारक हैं। कश्मीर कल्चरल ट्रस्ट स्थापित करने का केवल एक मात्र यह प्रयोजन था कि आज कल की परस्थितियों में 'कश्मीरियत' के महत्त्व को सम्पूर्ण रूप से जाना जाये तथा उस का विश्लेषण किया जाये। इस स्थान पर क़रीब-क़रीब वे सारे लेखक, विद्वान चित्रकार, प्रेस से जुडे लोग, आकाशवाणी तथा दूरदर्शन के संवाददाता एकत्रित हुए थे जो इस प्रकरण से परिचित थे अथवा इस प्रसंग के साथ उनका किसी न किसी प्रकार का आर्कषण था। वहां वे लोग भी विराजमान दिखाई देते थे जो प्रायः जाति के वरिष्ठ विचारक होने का दम भरते थे। सम्भवतः यह सेमिनार गत दस पन्द्रह वर्षों में प्रथम राष्ट्रीय सेमिनार था, जिस में इतनी सारी जनता भाग लेने के लिये उमड़ पड़ी थी। कार्यक्रम की विशेषता यह थी कि किसी भी राजनीतिज्ञ को इस में सम्मिलित होने का निमंत्रण नहीं दिया गया था। शायद इस अधिवेशन के प्रबन्धकों को इस बात का ज्ञान था या वे इस बात से पूर्णतया परिचित थे कि कश्मीर में जो त्रासदी पिछले दस पन्द्रह वर्षों में हुई और जो समस्यायें गत पचास पचपन वर्षों से चली आ रही है, उन सब के लिये राजनीतिज्ञ उत्तरदायी हैं, जो इस समस्या को उलझाने के अतिरिक्त माचिस की तीली भी दिखाते रहे। जिस के भीषण ताप से सारा राष्ट्र दग्ध था। इन

बातो को पूर्णतया तथा सांकेतिक या आंशिक रूप मे उन सारे भाषणों तथा प्रपत्रों में साफ़ दिखाई देता था जो भाषण वहाँ दिये गए और जो प्रपत्र वहाँ पढे गए।

मेरी बारी भी आई। मैं ने भी अपना लेख पढ़ा। इस पर भी काफ़ी वाद-विवाद हुआ। प्रपत्र पढ़ कर जब मैं अपने स्थान पर वापस लौटा तो अधेड आयु के एक व्यक्ति ने मुझे कान में कहा कि महोदय जी, आप को 'साहब' बुलाते हैं। साहब ! कौन से 'साहब' मैं ने विस्मय से पूछा 'शाह साहब' उस ने अपने उत्तर मे कहाँ।

मेरी समझ मे कुछ भी नहीं आ पा रहा था कि कौन सा साहब हो सकता है क्योंकि इस नाम के बहुत सारे लोग मेरे परिचय में आते थे। इस के बार-बार अनुरोध करने पर मैं विवश होकर कुर्सी से उठकर इस व्यक्ति के पीछे-पीछे सभागार से बाहर आया।

इस अधेड आयु के व्यक्ति ने मुझे थोड़ी दूर लान मे लिया और एक सूट पहने हुये सज्जन की ओर सकेंत किया। यह महानुभाव हमारी ओर पीठ किये हुये खड़े-खड़े सिगरेट के लम्बे-लम्बे कश उपर की ओर भर रहे थे। हमारे क़दमो की चाप सुनकर वह हमारी ओर मुड़ा। ज्योंही मेरी नज़र उस के मुख पर पड़ी, मुझे उन्हें पहचानने में एक क्षण मात्र भी नही लगा। गुलाम हसन शाह जम्मू-कश्मीर प्रदेश के भूतपूर्व डायरेक्टर जनरल आफ पुलिस (महा निदेशक) अर्थात् 'साहब'। साहब को मैं ने सम्भवतः बीस वर्षों के उपरान्त देखा पर उसके शारीरिक ढांचे मे ज़्यादा परिवर्तन नहीं आया हुआ था। पर सर के बीच वाले बाल जड़ चुके थे। सर के इर्द-गिर्द बारीक-बारीक बर्फ जैसे बाल। शरीर थोड़ा सा पिचका हुआ था। पर उतनी तो वास्तिवक प्रक्रिया ही तो थी। शायद वे अब अस्सी वर्ष से उपर के हो चुके थे। मैं ने सलामो अलैकुम कहा असलाम कहते कहते ही उसने मुझे गले लगाया। उसके गले मिलने में अपार प्रेम की गरमी थी। परन्तु गले मिलने में वह बल न था जितना उस में होना चाहिए था।

उसके दिल की तीव्र धड़कन इस बात का प्रतीक थी कि अब 'साहब' उतने बलिष्ट नहीं रहे हैं जितना मेरे मस्तिक मे अनुमान था। 'साहब' अर्थात् गुलाम हसन शाह साहब। जिस का नाम सुनते ही रोंगटे खड़े होजाते थे। अपराधी भाग जाते थे और कार्यालय के कर्मचारियों से पिशाव छूटता था। समाज शत्रु तत्त्व त्राहि-त्राहि किया करते थे। 'साहब' को अपने समय का एक प्रवुद्ध और निस्वार्थ पुलिस अधिकारी माना जाता था। उसे सव अधिकारी तथा राजनीति से सम्वन्धित लोग आदर की दृष्टि से देखते थे और सम्मान भी करते थे। सामान्य जनता में भी उनका दवदवा था। शायद वही समय अच्छा था जव कि पुलिस को समाज में अच्छी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। हमारे घर में तो 'साहब' भगवान् के वाद दूसरे नंवर पर आते थे। साहब टाठया जी यानि मेरे पिता जी के अफसर थे। मेरे पिता पुलिस विभाग में छोटे दर्जे के मुलाज़िम थे। वे साहब के साथ कम से कम पचीस वर्ष तक काम करते रहे। जहाँ-जहाँ भी साहब का स्थानांतर हो जाता था वहाँ-वहाँ मेरे पिता जी को भी इपने साथ ही लिए चलते थे। दोनों की एक साथ नौकरी में नियुक्ति हुई थी। अंतर केवल इतना रहा कि साहब ने नौकरी में वहुत उन्नति की। थानेदार से लेकर आई-जी-पी पुलिस की पदवी तक पहुँच गये। पर मेरे पिता जी जीवन पर्यन्त पुलिस मैन ही रहे। वह एक अपठित सीध ा सादा मनुष्य था। अनपढ़ होने से भी क्या होता है। बस यही समझ लीजिये कि वह सादा और नेक दिल मनुष्य था। नहीं तो कौन सा पढ़ा-लिखा था सोगामी साहब। वह वख्शी साहव की मेहरबानी से कहां से कहां तक पहुँच गया।

मेरी माँ उसे कभी सीधा-सादा और विनम्र नहीं समझती अपितु असाधु और वुद्धिहीन समझती थी जिस ने अपना सारा जीवन साहब का **गुदा धोने**[1] में व्यर्थ गँवा दिया और परिणाम

1. गुदा धोना - चमचागीरी करना। कश्मीरी भाषा में यह एक मुहावरा है।

कुछ भी नहीं। खैर, यह अपने-अपने भाग्य की बात है और कुछ नही। मेरे पिता जी को इस बात का कुछ भी पछतावा नहीं था। वह एक मोमिन था। साहब को काफ़ी मानता था और आदर भी करता था। वह बार-बार सगे सम्बन्धियों, मित्रों तथा पड़ोसियों के बीच में भी साहब को प्रशंसा करता रहता था। साहब के साथ टाठया के अच्छे संवंधो के विषय में सभी परिचित थे। कुछ लोग वैसे भी इस का मज़ाक़ उड़ाते थे और बुरा भला भी कहते थे। यहाँ तक कि साहब का वास्ता देकर उस से अपना उल्लू सीधा करवाते थे।

वह हर एक का काम 'साहब' से करवाता था। कुछ लोग अपना काम निकाल कर खुश हो जाते थे और कुछ लोग उसे भुरा-भला कह जाते थे। बहुत सारों का उस ने भला किया पर अपना समय आने पर कुछ भी न चली। कहते है कि नाई अपने वाल स्वयं नहीं काट सकता है।

मै इन ही विचारों मे लीन था कि कान्धो पर कुछ बोझ सा महसूस होने लगा। मै तुरन्त चौंक पडा। मै ने साहब के हाथ अपने कान्धो पर देखे।

''कहो ना बेटा ! किन विचारो में खोये हुए हो'' साहव ने मुझे से हंसते-हंसते पूछा। बस जी, कुछ नहीं, आप से गले मिल कर, मझे आनन्द सा प्रतीत हुआ, मैं ने अपने उत्तर में कहा। वास्तव में मैं ने आप को एक लम्बे समय के बाद देखा। अकस्मात् आप की मुलाकात से मन बहुत प्रसन्न हुआ। मुझे विश्वास ही नहीं हो पा रहा है कि क्या सच ही हम एक दूसरे के साथ वार्तालाप कर रहे हैं या यह एक सपना है।

नहीं बेटा यह सपना नहीं बल्कि एक सत्य और यर्थाथ है। सब से बड़ा यर्थाथ तो यह है कि मुहम्मद रमज़ान का बेटा जावेद अहमद एक बहुत बड़ी पदवी पर पहुँच चुका है। नाम कमाया है और इस दौर के कश्मीरी विचारकों में गिना जाता है।

क्या मज़ाक कर रहे हैं आप। मैं एक मामूली इन्सान हूँ।

राजनीति का पाटक। ''नहीं-नहीं वह तो आप का बड़प्पन है कि विद्वत्ता के इस शिखर पर पहुँच कर भी आप इतने विनम्र और सुशील हो ''माना कि मै भारत से बाहर कभी विदेश नहीं गया वहाँ की संस्थानों के बारे में वहुत कुछ जानकारी रखता हूँ। हावर्ड विश्वविधालय से स्नानकोतर को डिग्री प्राप्त करना कई सहज बात तो नही है। यदि आज मुहम्मद रमज़ान जीवित होते तो अपने सुपुत्र की सफलता को देखकर कितना खुश हो जाते।''-- साहब ने एक लम्बी सांस लेते हुए यह बात कही।

मैं ने अन्दर ही अन्दर विचार किया कि मेरा टाठ्या इस विषय मे बहुत ही सीधा सादा पुरूष था। वह पुलिस की नौकरी को ही सर्वश्रेठ समझता था। इसलिए मुझे भी पुलिस वाला बनाना चाहता था। दसवीं कक्षा से ही मेरे पीछे पडा था कि जावेद लाला को भी पुलिस मे भर्ती करालू। यह मेरी माँ ही थी जिस ने अपने प्रयासों से ऐसा होने नहीं दिया। पिता जी प्रायः कहते रहते थे साहब कहते है कि ले आओ अपने जावेद लाला को, मै उसे ए.एस.आई. अर्थात् थानेदार बनाऊंगा। उस से बडी नौकरी और कहाँ मिलेगी। पर मेरी माँ इन बातों को टाल देती थी। उसे पुलिस की नौकरी से सख्त घृणा थी। वह कहा करती थी,'' इतनी कठिन नौकरी और कोई नहीं। इस नौकरीं में न दिन है न रात। इस नौकरी में कोई संतुष्ट नहीं रहता। केवल तस्करों और बदमाशों से संगत रहती है। गाली गलौज सदा ज़वान पर होती है। ख़ुदा मेरी माँ को स्वर्ग नसीव करें। जो कुछ भी मैं इस समय हूँ वह उसी के आशीर्वाद का फल है।

''तुम्हारा प्रपत्र बहुत ही विचारणीय था'' साहब ने फिर एक बार मेरा ध्यान अपनी ओर आकीर्षत किया। रहने दीजिये, जो कुछ भी मेरे जी मे आया लिख दिया। नहीं जावेद साहब ऐसा मत कहो। तुम्हारा यह कथन सत्य पर आधारित है कि राजनीतिज्ञों ने कश्मीरियो को समय समय पर भ्रमित किया केवल अपने स्वार्थों के लिए। कश्मीर की राष्ट्रीय भावना का तिरस्कार किया

और हमारे अस्तित्व को भी आघात पहुँचाया। आप का यह कहना भी उचित है कि कश्मीरी भाषा और संस्कृति कश्मीरियत की असली पहचान है, जिसे सियासत दानों ने पद दलित कर दिया और वही लोग कश्मीरियत के नारे देते हैं। इस का सही अर्थ भुला देते हैं यदि भाषा तथा संस्कृति जीवित रहेगी तो उसी से कश्मीरियत जीवित रह सकती है। महोदय जी, छोड दीजिए अब कश्मीरियत और राजनीति, कर लीजिये कोई अपनी बात। मैं ने जानबूझ कर 'साहब' का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। आप आज कल कहाँ रह रहे हैं ? आप के बच्चे कहाँ है ? सलीम साहब कहा है ? सलीम का नाम सुनकर साहब के चहरे का रंग उड गया। मुख पर संजीदगी सी छा गई। वह जज़बाती होने के साथ-साथ बडा व्याकुल सा होकर मुझ से कहने लगा, क्या कहा जाये जावेद लाला, कहते हैं पत्ता पत्ता हर कोई बाँटे, भाग्य न बाँटे कोई। अपने अपने भाग्य की बात है पिता के भाग्य से बेटे का भाग्य नहीं बन सकता और न ही बेटे की तकदीर से पिता की काया बदल सकती है। गुलाम हसन शाह को यदि किसी ने तोड़ के और झँझोड़ के रख दिया, वह है उस का अपना पुत्र सलीम। सलीम वास्तव में नाफ़लक निकला। उस ने मेरा नाम ही डुबो दिया। साहब की आखों से अश्रु धारा उमड़ आई। शायद उसे लगा कि मैं उस से सच्ची सहानुभूति भी रखता हूँ और हितैषी भी हूँ। नहीं तो कहाँ साहब इतनी जल्दी हार मानने वाला था या अपने जज़बात को प्रकट करने वाला। या तो उसे मेरे टाठया का आभास मुझ में ही नज़र आया कि वह इतना भावुक हुआ। वास्तव में साहब को टाठया पर काफी विश्वास था। उस ने टाठया को अपना राज़दार बनाया था। चाहे वह अपने बाक़ी अधिकारियों को टोका टिप्पणी करता या अपनी धर्मपत्नी के कृपण स्वभाव के विषय में बात करता। टाठया को हर एक बात से अवगत कराता रहता था। 'साहब' की ऐसी दशा देखकर मै भी संवेदनशील बन गया। मुझे इस बात का एहसास हुआ कि

सलीम का प्रसंग साहब के सामने मुझे नहीं उठाना चाहिए था। मैं ने सुना था कि सलीम भी 'जहाद' के भंवर में फँस चुका था। विषय बदलने का प्रयत्न करते हुए मैं ने उस से बात काटते हुए कहा कि इस बाढ़ ने बड़े-बड़े सेतु बहा कर उखाड दिये। सलीम भी बचपने मे ही था कि इस अग्नि में आकर झुलस के रह गया। अब क्या किया जा सकता है। अरे भाई, दो बच्चों का बाप अभी बचपने में ही हो सकता है क्या? चालीस से उपर का हो चुका है।'' साहब ने क्रोधी हो कर चिल्लाया। मै सलीम को अच्छी तरह जानता था वह बचपन से ही आवारागर्द और मूर्ख लडका था। पढ़ने लिखने में उसे कोई रूचि नहीं थी मूढमति और चरित्रहीन। उसका उठना बैठना भी वैसा ही था। अमीर घरानो के बच्चों के साथ उस की दोस्ती थी। साहब को उस के लिए समय ही नहीं होता था और बच्चो के भविष्य का भी तनिक ध्यान न रहा। बेचारी माँ प्रायः बीमार ही रहती थी। इस लिए सलीम को कौन रोके रखता। वह दिन प्रति दिन बिगडता गया। जी, क्या सलीम साहब अपना व्यवसाय नहीं करते? मै ने जानना चाहा।

जी हाँ, पढ़ा-लिखा तो ज़्यादा नहीं था। फिर रेज़िडेंसी रोड पर एक अच्छा खासा रिश्ता शोरूम खोल के दिया। उसी बहाने एक अच्छे घर का रिश्ता भी मिला पर उसने उस रिश्ते से भी खिलवाड किया। फिर जब कश्मीर मे आतंकवाद का आतंक आरम्भ हुआ तो सलीम भी उसी भंवर मे फँस गया और घर-बार, बाल बच्चे छोड कर चला गया। बच्चे कितने बडे है? मैं ने साहब से प्रश्न किया। 'साहब' ने जेब से रूमाल निकाली, और आँसू पोंछते हुए कहा ''सलीम के दो बच्चे है लडका दसवी श्रेणी में पढता है और लडकी को पुलस टू की परीक्षा देनी है। उन दोनो को हम ने मसूरी बोंडिंग स्कूल में शिक्षा ग्रहण करने के लिए प्रवेश दिलवाया है।'' क्या अम्मी जी स्वस्थ है। मैं ने साहब से पूछा। 'साहब' ज़्यादा ही संवेदन शील हुए। सलीम की माँ सलीम का ही दर्द सीने में लिये आज से पाँच वर्ष पहले स्वर्ग

सिधार गई। ''इनना लिल्ला-व- इनालिल्लही राजहून'' अम्मी जी के देहान्त की बात सुनकर मेरा मन अत्यन्त उदास हुआ वह बहुत ही सुशील, विनम्र महिला थी। पर थी अपाहिज। मुझ से बहुत प्यार करती थी। पर एक ही अवगुण था उस में। वह बहुत कंजूस थी।

यदि उस ने सलीम साहब को किसी बोंडिंग स्कूल मे प्रवेश कराने की सलाह मानी होती तो बात कुछ और होती। सकीना भाग्यशाली थी कि उस को अपने ननिहाल वाले ले गए। उसने परिश्रम किया और डाक्टर बन गई। नहीं तो वह बेचारी भी दर-ब-दर होती। वास्तव में यह सारा कुछ अपने अपने भीग्य की बात है। जिसे उपर वाले ने यहां जो कुछ करने के लिए भेजा है। उसे वह सब कुछ करना ही होगा। क्या आप इन दिनों दिल्ली में रहते हैं? मै ने साहब से पूछा ''जी'' कहाँ ना मै ने सलीम के बच्चों को मसूरी बोंडिंग स्कूल मे दाखिला दिलाया है। मै उन्ही के पास गया था। वापसी पर यही से लौटा। सकीना का ससुर आजकल दिल्ली मे ही रहता है। उस ने आने के लिए बहुत बार कहा था। इसलिए दो तीन दिन के लिए उसी के पास ठहरा। सुना कि आज आई. आई. सी. एस मे कश्मीरियत पर सेमिनार है। मैं ने भी चाहा कि तनिक सुन लूँ कि लोगों के विचार अब क्या है। बुद्धिजीवी कश्मीर के बारे मे क्या सोचते हैं। खुदा की इच्छा ही यह थी कि इसी बहाने आप के दर्शन भी हुए। मन बहुत प्रसन्न हुआ। सच ही मुहम्मद रमज़ान बहुत भाग्यशाली था। जिस ने आप जैसे उच्चकोटि के विचारशील पुत्र को जन्म दिया जो आज इतनी महत्त्वपूर्ण बातें कहने में समर्थ है। आप शर्मिन्दा कर रहे हैं मैं कौन सा बुद्धिजीवी हूँ। सच ही तो कह रहा हूँ जिसे आप जैसा सपूत हो वह कितना भाग्यशाली हो सकता है देखो ना ''मुझ जैसा भाग्यहीन पिता''। साहब ने आह भरते हुए कहा। छोडिए ना इन बातो को आप का नाम सात पुश्तों तक चलता रहेगा। गुलाम हसन शाह का नाम कश्मीर के इतिहास में

हमेशा जीवित रहेगा। एक ईमानदार और अपराईट पुलिस अधिकारी।

''जावेद लाला, कुर्सी का जलाल कुर्सी के साथ ही समाप्त हो जाता है। यह कुर्सी किसी का साथ नही देती है। इस का अनुभव मुझे अवकाश प्राप्त होने के बाद हुआ। जो मेरे पीछे पीछे चला करते थे, वे अब मुँह की ओर भी नही देखते। हाँ, यदि कोई वस्तु वाकी रह जाती है, वह है अच्छाई। विचारों में महानता, विनम्रता तथा परोपकार भावना''। साहब की बातें सुनकर मैं चकित सा हो गया। कहते हैं ना, पेड़ को अपना ही फल झुकाता है। जो साहब आकाश से बाते करता था उसके विचारो में इतना बदलाव। मै ने बार-बार चाहा कि कहूँ आप तो किसी को ख़ातिर में ही नहीं लाते थे आसमान के साथ बातें करते थे। मुझे आज भी अच्छी तरह याद है कि मेरे पिता आपको ख़ुदा के समान मानते थे। जब उस के बेटे को वीज़ा लाने मे थोड़ी रूकावट आई थी तव आप ने एक छोटे से चिट पर लिखा था कि जावेद मेरे अरदली का बेटा है। उसे वीज़ा मिलना चाहिए। यदि मैं टाठया जी से यह कहता कि 'साहब' किस नज़र से आप को देखते हैं तो शायद उन के दिल की धड़कने रूक जाती। ख़ैर, यह सारा कुछ मैं ने अन्दर ही मन में दबाए रखा। कह देना मैं ने उचित नहीं समझा। 'साहब' को अपनी तक़दीर ने वैसे ही नीचे गिरा कर रख दिया था। मैं यदि उसे ताने देता तो वह मेरा छिछलापन होता। आख़िर वह पिता समान ही तो है। मैं ने बात घुमाते हुई कही।

देखिये ना इस लॉन में हम खड़े-खड़े अपने-अपने दुःखडे सुनाने लगे। आप थक गए होंगे। चलिए अन्दर रेस्टोरनट में। कुछ जलपान करेंगे। साहब ने सर हिलाकर मेरी बात पर साथ ही कहाँ। जावेद लाला, क्या यह अच्छा नहीं हुआ जो हम लान में ही रहे । अन्दर इतनी सारी बातें कैसे की जाती। मैं इन बातों से अपने को हलका महसूस करने लगा। आज मुद्दत के बाद

मुझे अपना कोई हमदर्द और सहानुभूति रखने वाला मिला। खुदा आप को शत शत वर्ष की आयु दे। जीते रहो। फलो फूलो। आप के पिता को मगफ़िरत हो। खुदा उसे जनत नसीब अता करे। चलो चलते हैं चाय पीने के लिए। चलिए, मै ने 'साहब'का हाथ थामा और चले गए अन्दर रेस्टोरनट में।

मोबाइल नंबर

यधपि पृथ्वी नाथ ने दिल्ली पहुँचकर बसों में सफर करना सीख भी लिया था पर फिर भी सवारियों से भरी हुई उस बस पर चढ़ने का साहस न हुआ, जिस की खिडकियों पर भी कुछ सवारियाँ लटकी हुई दिखाई देती थी। वह बस सिटाप पर ही ठहरा रहा। पसीना पोंछ कर जेव से एक छोटी डायरी निकाली, जिस पर उन का फोन नम्वर और पता भी लिखा हुआ था जिन के यहाँ उसे जाना था। बसों के नम्बर तथा सड़कों के नाम भी उसी में दर्ज थे। वह देखने लगा कि किस नम्बर की बस उसे सिटाप से घर तक ले चलेगी। घर याद आते ही उसे हंसी आई और एक लम्वी आह भर कर वह सोचने लगा। घर ! वह घर ही अब कहां रहा। सब कुछ खो गया। जीवन भर जो एक अध्यापक के रूप में मान-सम्मान अर्जित किया था वह सारा कुछ अब रहा नही। विरस्थापन ने इस कन्क्रीट जंगल में धकेल दिया था। जहां स्वछ और मन्द-मन्द वायु में सांसे लेने के लिए मनुष्य तरसता है। सारा कुछ विपरीत। विचित्र वातावरण, विपरीत परिस्थितियाँ प्रतीक्षा और लाइनों की कतारें। प्रभु जानता है कि मेरा नम्बर कब आयेगा। कब मेरे आशु का ग्रहण छँट जायेगा। नौकरी से आवकाश प्राप्त करने के बाद जो धन- राशि मिली वह आशु को कम्प्यूटर इंजीनियरिंग कराने मे लगा दी। फिर उस के बाद एम.बी.ए. कराया। पर क्या किया जाये। गत एक वर्ष से बेकार बैठा है। नौकरी ढूँढते-ढूँढते कार्यालयों के चक्कर काटता फिरता है। तपती धूप में घूमते घूमते उसका गुलाब जैसा मुंह मुर्झा कर पीले फूल की तरह बन चुका है। घर में अब ज़्यादा

बोलता तक भी नहीं है। यह स्थिति वास्तव में मेरे पापों का ही फल है और कुछ नहीं। चन्द रूपयों से दिल्ली जैसे नगर में गृहस्थी का भार उठाना, लोहे के चन्ने चबाने से भी ज़्यादा कठिन है। अब शिवी बेटी भी बड़ी हो चुकी है। उसने भी अब कालेज की पढ़ाई पूरी कर ली है। एक ही आशा है अब। हाँ एक ही आशा है अब मेरी इस काया में, जो मेरी सासों को जीवित रखे हुए है। काश आशू को कोई काम धंधा मिल जाता तो मैं 'शिवी' को लगन के पवित्र मंडप पर विदा करता। फिर यदि मैं मरता भी तो कम से कम शीतलता का आभास सा मिल जाता। काश..... ..देवी माँ मेरे बाग़ को भी प्रफुल्लित करती। अपने अति प्रिय अनुयायियों की तरह......." उस के विचारों का ताँता उस समय टूट गया जब चार पहियों वाली बस वहीं आ के रूक गई। वह उसी रूट की बस थी जहाँ उसे जाना था। उस में कुछ खाली सीटें देखकर उसे विश्वास ही नही आ रहा था। वह तुरन्त बस की एक खाली सीट पर खिड़की के पास बैठ गया। बस चल पड़ी। तनिक सुहावनी हवा से उसे आनन्द का एहसास होने लगा और आशु के विषय मे न जाने क्या-क्या सोचते सोचते उसे नीदं सी आई।

कुछ समय ऐसे ही बीता फिर पृथवी नाथ मोबाईल फोन की घन्टी से जाग गया। अपने आस पास जैसे किसी ने कस्तूरी बिखेर दी थी। जैसे वह कश्मीर में बसन्त में खिलने वाले 'ब्रेयड' फूल के पौदे के पास सोया हुआ था। उसका रोम-रोम सिहर उठा। लम्बी सांस लेकर आँखें खोली और अपने सीट के पास एक अधेड़ आयु की एक महिला को कान के साथ मोबाईल फोन लगाये हुए बातें करते देखा। दूसरे हाथ से वह अपने खुले बालों को सम्बाल रही थी। पृथवी नाथ हैरान हुआ कि "यह महिला मेरे साथ कहां से मेरी सीट के पास बैठी हुई है फिर,अपनी जेबों को टटोलते हुए खुश होकर इस महिला की ओर निरंतर घूर-घूर कर देखता रहा वह से'ल फोन पर लगातार बातें करने मे व्यस्त थी। ज़्यादा तर बातें वह हिन्दी मे करती थी पर बीच-बीच मे

अंग्रेज़ी मे भी बोल रही थी। पृथवी नाथ को उस की बातों में कोई रुचि नही थी, परन्तु उस का ध्यान उसके दूसरे हाथ की ओर आकर्षित हुआ जिस से वह अपने बालों को बार-बार संवार रही थी। उँगलियों पर लगी नेल पालिश और वे लम्बे-लम्बे नाखूनों वाली सुन्दर उंगलियां जैसे अन्दर ही अन्दर पृथवी नाथ के हृदय को कुतर रही थी। उस के दिल की वह खिड़की खुल गई जो एक लम्बे समय से बन्द पड़ी थी। उसे आज से पूर्व पचीस वर्ष का सारा दृश्य याद आया जब उसका मिलन पहली बार निशात बाग में आशु की माँ फूला से हुआ था। बरावर तीन घन्टे प्रतीक्षा करने के बाद जब उस की वेताबी बढ़ गई तो अकस्मात् जैसे वायु में परिवर्तन सा आ गया। जैसे चारों ओर कस्तूरी की सुगन्ध महक उठी हो। फूला के कदमों की चाप और धीरे-धीरे पृथवी नाथ के सामने जैसे पूर्णिमा का चन्द्रमा। फिर जब उसने मेहन्दी लगे हाथों से उसे नमस्कार किया तो इतनी देर तक प्रतीक्षा करने का सारा गिला दूर हुआ। फूला की सुन्दरता, नज़ाकत, और सौम्य व्यवहार देखकर पृथवी नाथ का मन गद्-गद् हुआ और उसने फूला के साथ विवाह करना निश्चित किया। सम्भवतः पृथवी नाथ के जीवन में वैसे मधुर और उल्लास पूर्ण क्षण कभी भी पुनः लौट के नहीं आये होंगे। वह उन ही विचारों में डूब चुका था कि से'ल फोन की लम्बी घन्टी ने उस के विचारों का धागा ही काट डाला। उस ने फिर एक बार अपनी नज़र उस महिला पर डाली। वह फिर उसी अन्दाज़ मे फोन से लिपटी हुई थी। इस के बाद पृथवी नाथ को नींद की कोई झपक नहीं आई। बराबर आधा घंटा उस का ध्यान उसी महिला की तरफ रहा। इस बीच कितने सिटाप आए और कितनी सवारियां चढ़ी और उतरी पर उसे ध्यान तक न रहा। उसे केवल यह विचार बराबर रहा कि इस आधे धंटे में उस महिला को सात आठ बार फोन आया। द्रिन-द्रिन आवाज़ सुन कर पृथवी नाथ केवल विचलित ही नहीं हुआ अपितु उसे उस महिला के विषय

में जानने की एक जिज्ञासा भी उत्पन्न हुई। उस ने सोचा कि हो-न-हो यह देवी कोई प्रतिष्ठित महिला होनी चाहिए। शायद कोई उच्च कोटि की राजनीतिज्ञ या कोई विशेष अधिकारी। से'ल फोन के एक बार फिर ड्रिन-ड्रिन से पृथवी नाथ के कान खडे हुए। उसे वास्तिविक रूप से इस बात पर संतोष हुआ कि सच ही यह कोई ख़ास महिला है। फिर वह यह भी सोचने लगा कि यदि यह कोई ख़ास महिला होती तो बस में यात्रा नही करती। पर साथ ही प्रश्न का उत्तर भी टूँट लिया कि दिल्ली में बहुत भीड़-भाड़ होने के कारण जान बूझ कर लोग अपनी गाडियों में सफर नही करते।'' यह सोचते सोचते उस के मन में से एक विचार आया और बडी विनम्रता तथा आदर से उस महिला से कहने लगे, "Excuse me madam" क्या आप मुझे अपना मोबाईल नम्बर देंगे। इस से पहले कि मैडम कोई उत्तर देती, उस ने जेब से डायरी और पैन निकाला और फिर मैडम की ओर देखने लगा।'' आप को मेरा मोवाईल नम्बर किस लिए चाहिए।'' उस ने चकित होकर कहा।''

मैडम, मैं बेटे की नौकरी के विषय में आप से बात करना चाहता हूँ। ''ठीक है लिखिए।'' मैडम ने बिना किसी संकोच के कहा। पृथवी नाथ ने मैर्डम का मोबाईल नम्बर अपनी डायरी में लिखा और फिर डायरी अपने जेब में रखी। वह थोड़ी सी खुशी महसूस करने लगा। उसे लगा कि यही क्षण मेरे उज्जवल भविष्य और अच्छे प्रारब्ध के हो सकते है। प्रभु को अब मेरा भाग्य संवारना है। इसी कारण बिना किसी झिझक के मैर्डम ने अपना फोन नम्बर दिया। इस के साथ ही उस का सिटाप आ गया और मैर्डम को धन्यवाद देकर वह बस से नीचे उतरा।

दूसरे दिन प्रातः जब पृथवी नाथ नींद से जागा, स्नान आदि कर के सबसे पहले निकट ही एक मंदिर मे जाकर पूजा अर्चना की। धूप, रत्नदीप, जलाकर मन को एकाग्र कर के पाठ करने मे लीन हुआ। आज उस ने दैनिक पूजा में पन्द्रह-बीस

मिन्ट ज़्यादा लगा दिए और पुजारी से चरणामृत तथा नैवेध प्राप्त करके तेज़ी से घर की ओर चला पड़ा। घर पहुँचने से पहले वह एक पी. सी. ओ दुकान पर गया और मैडम से फोन पर बात की। शायद फोन व्यस्त था। पृथवी नाथ थोड़ा सा उतावला होने लगा। थोडी देर के बाद उस ने फिर फोन मिला दिया। नम्बर मिल गया। वह बहुत ही विनम्रता से कहने लगा। ''मैडम, हम कल बस मे मिले थे। आप ने अपना मोबाईल नम्बर दियां था। मै आज आप से मिलना चाहता हूँ।''

मैडम ने अपना पता दिया और ग्यारह बजे मिलने के लिए कहा। रिसीवर नीचे रख दिया और घर पहुँच कर अपनी पत्नी से कहा। ''मेरे लिए जल्दी से एक कप चाय बना लेना।'' क्यों ! आप को इतनी क्या जल्दी है? फूला ने विस्मित लहजे में कहा। मुझे एक ''मैडम से आशु की नौकरी के बारे में ग्यारह बजे मिलना है।'' पृथवी नाथ ने कहा। अच्छा आप बैठिये। ''मैं तुरन्त चाय और रोटी लाऊगी।'' फूला ने नर्म लहजे में कहा। फूला चौके के अन्दर चली गई और पृथ्वी नाथ ने अलमारी से एक फाइल निकाली। इस में से आशु के सी.वी. की एक कापी निकाली। विचार आया कि आशु को जगाया जाए पर साथ ही विचार किया कि नींद से जगाना उचित नही होगा। वह कल रात देर तक cyber cafe से internet द्वारा.......नौकरी ढूँढने के कारण घर देर से आया था। पृथ्वी नाथ तुरन्त कमरे से बाहर निकल आया। डायरी और पैन स्वभाव के अनुसार ही जेब मे रख दिए। सी.वी की कापी मोम जामे के लिफाफे में रख दी। चाय के साथ एक दो फुलके खा कर वह तेज़ तेज़ कदमों से दरवाज़े की ओर चला। फूला ने 'शिवी' से कहा ''अरी, ज़रा अपने पापा के दाईं तरफ से निकलना'' शिवी कालेज जाने के लिए तैयार थी। उस ने पानी का एक जग लाया और बाहरी दरवाज़े से अपने पापा के दाएँ तरफ से चली आई। पृथ्वी नाथ उस के दाए तरफ से निकल गया और उस के सरपर हाथ रखा।

तेज़ तेज़ कदमों से चलते चलते बस स्टॉप पर पहुँचा। थोड़ी देर में बस आगई। उस ने बस के पायदान पर पैर जमाये और बडी कठिनाई से अपने आप को बसके अन्दर ठूंस दिया। एक के बाद दूसरी बस बदलते हुए पृथवी नाथ आख़िरकार अपने अंतिम पड़ाव पर क़रीब-क़रीब साढ़े दस बजे पहुँचा।

खन्ना एण्ड खन्ना लिमिटिड। यह कार्यालय जी.बी.रोड पर था परन्तु रेड लाइट इलाके से बहुत दूर। तीन मंज़िला यह इमारत बहुत ही आलीशान थी। मुख्य गेट पर दो द्वारपाल थे। पृथ्वी नाथ ने रजिस्टर पर अपना नाम और पता लिख दिया। चौकीदार ने उसे वह दरवाज़ा दिखाया जो मैडम खन्ना का कार्यालय था। कार्यालय के दरवाज़े के पास दो चपरासी खड़े थे। उन्होंने कहा कि मैडम अभी नहीं आई है। अपितु उसकी निजी सचिव अन्दर बैठी हुई है। पृथ्वी नाथ पी.ए. के पास चला गया और उसे कहा कि मैडम ने ग्यारह बजे मिलने का समय दिया है। उस ने अपनी डायरी देखी और सकारात्मक उत्तर देकर उसे एक सोफे पर बैठने को कहा। चपरासी पानी का एक गिलास लेकर आया। पृथवी नाथ जैसे प्यासा था। उस ने एक ही घूँट में सारा गिलास खाली कर दिया और आनन्द सा अनुभव करने लगा। उस ने अपना ध्यान मेज़ पर रखे समाचार पत्रों की ओर दिया, पर मन में एक घबराहट सी थी। फिर उसे अख़बार पढ़ना भी अच्छा न लगा। फिर बराबर पोने ग्यारह बजे मैडम आई और सीधे अपने कार्यालय के अन्दर चली गई। उस के पीछे ही उस की पी.ए. भी अन्दर चली गई। दस मिन्ट बाद जब पी.ए वापस बाहर आई तो पृथवी नाथ को अन्दर जाने के लिए कहा। पृथवी नाथ के दिल की धड़कने तेज़ हो चुकी थी। भयभीत होकर अन्दर चला गया। दोनों हाथ जोडकर मैडम को प्रणाम किया। नमस्कार का जवाब देकर मैडम ने अपने सामने की कुर्सी पर बैठने का संकेत किया। वह कुर्सी पर बैठा। जी, बोलिए क्या बात करना चाहते है आप मुझ से! मैडम की बातों में विनम्रता भी थी

और शालीनता भी। उस का इतना ही कहना था कि पृथवी नाथ ने उसे अपनी सारी व्यथा सुनाई। पहले कश्मीर से दिल्ली तक की अपनी यात्रा का सारा वृतान्त। फिर आशु के विधातयजाने से एम.ए. की उपाधि प्राप्त करने तक के पढ़ाई के सफ़र की कथा। पृथवी नाथ ने अपनी सारी बाते सुनाकर अपने मन का बोझ इस प्रकार हलका किया जैसे उस ने किसी थेले में इन बातों को बन्द रखा था और अब गांठ खोल दी। मैडम बडे ध्यान से सब बातें सुनती रही। जब उस ने आशु की सी.वी. पढ़ी उस के दिल मे एक उत्साह सा उत्पन्न हुआ। एक हाथ से बालों को संवारती हुई उस ने पृथवी नाथ सें कहा। ''मै इस लड़के से बात करना चाहती हूँ। कल मै दो तीन दिन के लिए कोलकता जा रही हूँ। क्या आप अपने बेटे से मेरी बात आज ही करा सकते हो? ''जी हाँ, जी हाँ। जैसे आप की इच्छा।'' पृथवी नाथ ने क्षण भर में जवाब दिया। मैडम खन्ना ने अपना मोबाईल पृथवी नाथ के हाथों में थमाया और उस ने घर के दूसरे किरायदारों का नम्बर मिला कर आशु को फोन पर बुलवाया। फोन वापस मैडम को देते हुए उसे कहा। ''लीजिए मेरे बेटे से बात कीजिए।'' मैडम ने आशु से बराबर बीस मिन्ट नक बातें की। इस दौरान पृथवी नाथ को कोई ध्यान न रहा कि क्या वार्तालाप हो रहा है। कुछ तो उस की समझ से बाहर था। वह मन ही मन इन्द्राक्षी का पाठ दोहरा रहा था। पीले चावल बनवा कर चढ़ाने और सत्यनारायण की पूजा कराने का दृढ संकल्प भी मन ही में कर लिया था। इस समय मैडम उस के सामने कोई सामान्य या असमान्य महिला नहीं थी, जो उसे बस में मिली थी अपितु किसी देवी का स्वरूप। मन ही मन जैसे इस बात का आश्वासन सा मिला कि 'माँ देवी' को अच्छा ही मार्ग दिखाना होगा। ए.सी. की सर्द हवा से उस का शरीर ठंडक महसूस करने लगा। जैसे वह फिर एक बार निशात बाग़ की बारादरी पर चिनार के साये के नीचे बैठा हुआ था। रोम-रोम मे ए.सी. की शीतल हवा समा गई। मैडम के ज़ोर ज़ोर

हंसने ने उसे फिर से सचेत कर दिया। मैडम आशु से हंसते-हंसते कह रही थी "You are a brilliant boy and Lucky to have a father like him, you are selected for a job."

यह कह कर उसने फोन बन्द कर दिया। पृथ्वी नाथ को खुशी का कोई ठिकाना न रहा। उस की आँखो से हर्ष और उल्लास के आँसू छलक पडें। उसे विश्वास ही नही आ रहा था कि क्या 'माँ देवी' ने उसकी सुनी। मैडम ने कहा। आप का बेटा काफ़ी होशयार है। मेरे कार्यालय मे उसके लिए एक स्थान रिक्त है। उसे बोलिए कि तीन चार दिन बाद जब मैं कोलकता से लौटूँगी, मुझे आकर मिले। साथ ही यह भी कहा। क्या अजीब इत्तिफ़ाक़ है कि आप की मुलाकात मुझसे बस में हुई। वास्तव में कल घर जाते हुए मेरी कार ख़राब हो गई। मैं ने अपनी गाडी और ड्रायवर सड़क पर छोडे और चार पहिए वाली बस में सवार हो गई। मैं टैक्सी या आटो में सफर करना पसन्द नही करती हूँ। आप निश्चय ही बड़े भाग्यशाली हो। पृथ्वी नाथ कोई उत्तर देने में असमर्थ रहा। वह जैसे गूँगा सा बन के रह गया। वह हाँ-हाँ कह कर एक दम कुर्सी से उठ खडा हुआ और हाथ जोडकर मैडम को धन्यवाद देते हुए कहने लगा। ''मैं ने सुना था कि माँ भगवती मनुष्य को किसी रूप में मिल सकती है, परन्तु आज मुझे पूरा विश्वास हो गया।'' फिर एक बार मैडम का धन्यवाद करते हुए वह कार्यालय से बाहर आया।

आज वह खुशी से इतना भाव विभोर हो चुका था कि बस की प्रतीक्षा तक भी नही की। उस ने एक आटो वाले को आवाज़ दी। उसे केवल इतना कहा कि जेब मे पूरे पैसे नही है। घर पहुँच कर ही दे दूँगा। आटो वाले ने बात मान ली। पृथ्वी नाथ आटो में बैठ गया। जेब से डायरी निकाली और मैडम के मोबाईल नम्बर को घूर-घूर कर देखता रहा। बराबर वहाँ तक जब वह अपने डेरे के निकट पहुँच गया।

◆◆◆

शफ़ा

कैसे हो अब? नर्स ने हंसते हंसते फूला जी से पूछा।

फूला जी ने ज़बान से कुछ नही कहा, केवल हाथ से ही संकेत किया कि अब तक ठीक ही हूँ।

नर्स ने मुंह खोलने को कहा। फूला जी ने मुंह खोला और नर्स थरमामीटर मुंह मे रख कर घड़ी की ओर देखने लगी। फूला जी स्नेह पूर्ण नज़रो से नर्स की ओर घूर-घूर कर तकती रही। मुंह बन्द होने के कारण कुछ बोल भी नहीं सकती थी। कहती भी क्या? उसे नर्स की भाषा का तनिक ज्ञान भी न था। पर हाँ, फूला जी कश्मीरी भाषा मे ही नर्स से वार्तालाप करती थी। नर्स भी टूटी-फूटी भाषा मे बात तो कर ही लेती थी और फूला जी भी अपनी ओर से कश्मीरी में ही उतर दिया करती थी। गत दो सप्ताह से ये दोनों प्रश्नोत्तर की भाषा में बोलने की सीमाएँ पार कर चुके थे और पारस्परिक वार्तालाप का एक निराला संबंध भी गठित कर चुके थे। दोनों एक दूसरे की बातें समझ ही लेते थे।

नर्स ने फूला जी के मुंह से थरमामीटर बाहर निकाला। खिड़की की ओर थरमामीटर को देख, उल्लास से बोल पडी। हाँ, अब तो तुम ठीक हो और ज्वर भी नही है। उस की फाइल पर कुछ लिख कर ट्रे (Tray) से दवाई की दो-तीन टिकियां उठा कर उसे फिर मुंह खोलने को कहा। मुंह में दवाई डाल कर पानी का गिलास भी उस के हाथ में थमाया। फूला जी ने एक ही घूँट में गिलास खाली कर दिया। तौलिया से मुंह पोंछ लिया। फिर नर्स की ओर नज़रे जमाये उसे देखती रही। 'क्या दिख रहा है माता जी, नर्स ने पूछा। 'बहुत ठीक हो गया है।'' फूला जी मूक बन

के रह गई। उसे अपने शरीर से अब ज़्यादा बन्धन भी नही रहा था। होता भी कैसे? जीवन में उस ने सुख के पल ही कब देखे थे?

नयी नवेली दुलहन ही थी कि माथे का सिंदूर उझड गया। उस भीषण संकट को जैसे तैसे झेलती रही। पर उस दुःख के बाद जो गाज़ उस पर गिरी, वह अकथनीय है। घर उझड़ गया। जीवन भर की गृह संपति छोडकर, भयाक्रांत होकर रात के अन्धेरे मे घर से पलायन करना पडा। पलायन से पहले अपने एक मात्र पुत्र, हृदय के लाल को बलि की भेंट चढ़ाना पड़ा। सन्धया के समय उसे घर से उठा के ले गए और अगले दिन प्रातःकाल के समय उस का मृत शरीर आंगन में था। फूला जी 'गोशा' का दुःख कैसे भूलती। वह अपने छोटे बेटे को 'गोशा' कहा करती थी। 'गोशा' कश्मीर विश्ववधिालय मे एम.ए. कर रहा था। बस उस भयानक दृश्य के बाद फूला जी का सारा संसार लुट गया। वह अपने बड़े बेटे 'सॅबा' के साथ जम्मू भाग कर आई। सॅबा ए.जी. कार्यालय मे लेखाकार था। उन के नाम पुरखू कैम्प में एक तम्बू एलाट हुआ था। जहाँ वे गत चार वर्षो से रह रहे थे। वहीं पर फूला जी ने सॅबा का विवाह भी रचाया। अब तो कुछ ही समय पूर्व मिश्रीवाला कैम्प में उन्हें एक कमरे का सेर्ट एलाट किया गया था। एक कमरा और एक किचन। बाथरूम स्नानकक्ष और शौचालय बहुत से क्वाटरो के लिए एक ही रखा गया था। फूला जी अपने कमरे को सीमेंट का कमरा कहा करती थी। उस में न कोई खिड़की थी और न दरवाज़ा। अलमारी और शल्फ तक भी न था। अब उस का सारा संसार उसी सीमेंट के बन्द कमरे में था। उस की दुनिया अब केवल तीन सदस्यों तक ही सिकुड़ कर सीमित होगई थी। सॅबा, उस की पत्नी रीता जी, और उन का दो वर्षीय पुत्र कश्यप। बाकी भाई बन्धु, पडौसी और सगे संबन्धी सब उन से बिछुड़ के रह गए, बिखर गए कुछ यहाँ कुछ वहाँ। कुछ दूर बहुत दूर और कुछ अनजानी राहों की ओर।

''माता जी क्या सोचता तुम। चलो लेटो आराम करो''। नर्स ने फूला जी का सरहाना निकाल कर उसे बिस्तरे पर लिटाया और चल दी। फूला जी उसे पीछे से देखती रही। वह अन्दर से सोच रही थी कि कितनी अच्छी है यह नर्स। मेरी कितनी सेवा करती है। बातें हर बार हंसते मुख करती है। रीता जी के स्वभाव का क्या किया जाये। नाक भौहें चढ़ा कर रहती है। मुख पर घृणा के भाव स्पष्ट दिखाई देते हैं। भात-थाली यदि सामने रख देती है तो लगता है जैसे किसी कुत्ते को 'हून्यमेर्यट' फैंकती है। वैसे पैर दबा कर चलती है जैसे मै कहीं उसे खाये जा रही हूँ। अपने अपने भाग्य हैं फूला जी ने एक लम्बी सांस ली। फूला जी इन ही विचारों में मग्न थी कि उसी क्षण सॅबा जी ने वार्ड के अन्दर प्रवेश किया। हाथ मे बैग और थरमास था। इन्हें बे'ड के साथ लगी छोटी अलमारी पर रखा और स्वयं माँ के निकट रखे हुए सिटूल पर बैठ गया।

मम्मी कैसी हो अब? स्वास्थ्य कैसा है? किस विचार में डूबी हुई हो? हाँ, बेटा ठीक हूँ। मैं इस नर्स के विषय में सोच रही थी। कितनी अच्छी है। सर्वदा मुस्करा कर बात करती है। सॅबा ने भाँप लिया कि मम्मी का इशारा किस की ओर है। उस ने बात को काटते हुए कहा। यह तो इन की डयूटी है। थोड़े ही किसी पर कोइ एहसान करती हैं। वेतन तो मिलता है ना अच्छा। छोडिये इन बातों को। उठो, हाथ साफ कर के खाना खा लो। मुझे कार्यालय भी जाना है ना। सॅबा ने माँ को चिलमची में हाथ साफ करवाये। टिफ्फन खोल कर माँ के सामने रख दिया। माँ, यह बे'ड नम्बर चार की मरीज़ कहां गई? क्या वही नसीमा जी? मम्मी ने पूछा। हाँ, उसी के बारे में पूछ रहा हुँ। उसे डाक्टर ने ओ.पी.डी में बुलाया था। सुनने मे आया है कि किसी बड़े डाक्टर से उस की जाँच करवाई जायेगी। उसे इतना क्या हुआ है? वह तो वैसे चहरे से हृष्ट-पुष्ट दिखाई दे रही है। फूला जी ने पूछा। "जो घटना तुम्हारे साथ घटी है'' सॅबा ने आह भरते हुए

कहा। मैं ने बहुत बार उस से बात करने का प्रयत्न किया पर उस ने किसी बात का उत्तर ही नही दिया। केवल मेरी ओर घूर-घूर कर देखती थी। मेरे ''डेजुहोर'' को एक बार हाथ में पकडा और हंसने लगी। हाँ, यह भी मैं ने पूछा था कि क्या तुम रावलपोरा को तरफ कभी जाती हो? इस बात का भी उस ने कोई जवाब नही दिया। माँ बेटा यहीं बातें कर रहे थे कि उधर से मीनावती भी अन्दर आई। सॅबा स्टूल से उठ खड़ा हुआ और मीनावती को बैठने के लिए कहा। वह स्टूल पर बैठ गई। माँ को हाथ धोने के लिए फिर से चिलमची में पानी डाला। टिफ़्-इन के डिब्वों को एक दूसरे पर रख कर टिफ़्-इन बन्द कर के बैग में डाला। अब आप दोनों तब तक बाते कीजिए जब तक मैं डाक्टर से मिल आता हूँ। यह कह कर सॅबा निकल पडा।

'अब क्या हाल है आपका' मीनावती ने फूला जी से पूछा।

''बस आज लगता है कि दिल को थोडा बहुत करार सा आ गया है''। फूला जी ने जवाब दिया। ''अब क्या घबराहट तो नही होती है? आप को क्या ख़बर, मैं कितनी घबरा गई। सारे कैम्प मे कोलाहल सा मच गया जब यह कहा गया कि फूला जी को टैक्सी में अस्पताल ले गए। मैं आप को देखने के लिए अवश्य आई होती पर मेरा शरीर भी ठीक नही था''। मीनावती ने कहा। आप के बिना वहां मरूस्थल सा लगता है। क्या आप की बहू कभी यहाँ आई थी।' मीनावती ने पूछा। हाँ आई थी। एक दो बार। बेचारी करेगी भी क्या। छोटे-छोटे बच्चे हैं। उन्हें सभाँलने के लिए तो दूसरा कोई है नहीं। फूला जी ने कहा।

मीनावतीः अरी क्या हमने बच्चे नहीं पाले है? यह कहों ना कि कुछ विस्थापित (मायग्रन्ट) पुत्रवधुएँ बेशर्म हैं। इन्हें अपना आप और पति चाहिए। पता नहीं यह माइग्रटं पानी पी कर सब का दिमाग़ ख़राब क्यों हो गया है।

फूला जीः नहीं नहीं ! मेरी रीता जी ऐसी नहीं है। फूला जी पर

जो सितम बहू ने ढाये थे। वह उन्हे अन्दर ही अन्दर दबाए रखी हुई थी। वाहर से उस पर न्यौछावर सी होती थी और उसे आँखों-आँखों प्यार करती थी। उस बेचारी ने हमारे पास कौन सा सुख देखा। उसे लग रहा होगा कि हम सदैव निर्धन और दरिद्र थे। जैसे हम ने तम्बू में ही जन्म लिया था और पले बडे भी थे। उसे क्या मालूम कि रावलपोरा में हमारा तीन मंज़िला मकान था। सामने एक कनाल पर फैला हुआ ब़ाग था। खाता-पीता घराना था। फूला जी की आँखो से आसूँ छलकने लगे।

मीनावती: इसी को कहते है पीठ पर बैठी पटरानी नहीं तो नौकरानी। छोड़िये ना अव। यह एक पर नहीं बीती अपितु सब इस अगिन से दग्ध हुए। क्या आप को विदित है कि दीना नाथ की वेटी सरला किसी डोगरे लड़के के साथ भाग गई। अभी तक हाथ नहीं आई। कल रात कैम्प मे पुलिस भी आई थी। गोल आकार की गिठी बैंगन थी वह।

फूला जी: हाय, सब कुछ तहस नहस हुआ। जब जड़ें ही उखाड़ दी गई तो ऐसा होना स्वाभाविक ही था। आज के बच्चों को क्या मालूम कि हम किस बड़े वंश के संतान हैं। अब भी क्या पता है कि भविष्य में क्या होने वाला होगा।

मीनावती: अच्छा अब मैं जा रही हूँ। बहुत देर हुई।

फूला जी : क्या जल्दी है अभी। बैठी जो हो।

मीनावती: अरी नही। मुझे राशन भी लाना है ना। अपने मोहन जी को कल मकान की नीव भी डालनी है।

फूला जी : फिर तो बधाई है। कहाँ बना रहे हो?

मीनावती : क्या कहों। मुझे मालूम ही नही है। कहता है कि कही जानीपुर में ही है। हंसाया भी कल रात बहुत। माता जी मेरे वचपन में कहा करती थी कि मन्ना (मीनावती) पहाड पर रह कर भी अपनी घर गृहस्थ चला सकती है। काश वह जीवित होती तो देखती कि किस पहाड़ के शिखर

पर मैं ने मकान बनाना है।

फूला जी : तब तो तुम सॅबा जी के साथ ही चली जाओ। आता ही होगा वह।

मीनावती : कहाँ चला गया?

फूला जी : कहता था डसक्टर के पास जाऊंगा। शायद वहीं से इन कश्मीरियो के पास भी गया होगा।

मीनावती : क्या उसी मुसलमान महिला के पास ?

फूला जी : सम्भव है।

मीनावती : कहते है कि इस के दो बेटे क्रास-फाइरिंग में मर गए है। कहीं, क्रेक डाउन हो रहा था।

फूला जी : यह क्या होता है क्रास-फाइरिंग और क्रेक-डाउन।

मीनावती : मेरी भला जाने। इन्हों ने ही तो दावत देकर बुलाया है इनको। अब तो इन ही से इस प्रकार की फिरौती मांगते है।

फूला जी : हाय बेचारे। क्या वहां इन्हें कोई डाक्टर नहीं मिला जो इधर आना पडा।

मीनावती : यह तो इसी डक्टर राज़दान के पास आए हुए होंगे। हाँ,अब तो सॅबलाल भी आ गए। मैं इन ही के साथ चली जाऊंगी।

सॅबा ने जल्दी जल्दी बैग उठा लिया। ''डाक्टर ने क्या कहा''? फूला जी ने पूछा। डाक्टर साहब कहते थे कि तुम अब बहुत ठीक हुई हो। शायद तुरन्त ही छुट्टी दी जायेगी। अच्छा, आराम करो। मैं शाम को लौट के आऊंगा। सॅबा और मीनावती वार्ड से बाहर आ निकले। फूला जी ने बिस्तर पर सर रखा और छत पर लगे पंखे की ओर घूर-घूर कर देखने लगी। छुट्टी का शब्द सुन कर ही उस का मन व्यथित सा होने लगा। उसे अस्पताल का वातावरण काफ़ी भाया था। प्रातः से सायं तक राज रानी की भाँति बेड पर बैठी रहती थी। हर एक वस्तु उसे सामने ही मिलती रहती थी। वह भी किसी चिक-चिक के बिना। खुली

जगह। सरहाने के पास लगी बडी खिड़की। वार्ड में जनता का आवागमन। वार्ड के बाहर एक बड़ा बरामदा। दिन रात निरंतर पानी और बिजली। तेज़ गति से चलने वाला पंखा। प्रत्येक व्यक्ति की ओर से सहानुभूति। सब से महत्त्वपूर्ण कैरला की उस नर्स का शालीनता पूर्ण स्वभाव। यह सब कुछ छोड़कर वह उस सीमेंट के कमरे में नहीं जाना चाहती थी। तीव्र गति से चलने वाले पंखे के साथ-साथ ही फूला जी के मस्तक में विचार तेज़ गति से आते और चले जाते थे। वह अपने जीवन के सारे पन्नों को एक-एक करके पलटती रही। बचपन से लेकर इस घड़ी तक अपने जीवन की यात्रा उस ने कुछ ही मिन्टों मे तय की। उसे लग रहा था कि सॅवा के छोटे बेटे कश्यप के साथ उसे फिर एक वार नये सिरे से जीवन की यात्रा आरम्भ करनी है। पर तुरन्त उसे यह भी लग रहा था कि फिर एक बार नये सिरे से जीवन के उन दुःख दायी मरहलों से निकलना उस के बस की बात नहीं रही है। इतना कर के उसे क्या प्राप्त हुआ है। यह सारा संसार मिथ्या है अस्थिर जाल। एक सपना। कितना ही लम्बा, मीठा या कड़ुआ हो जीवन, आखिर इस का अन्त तो होना ही है। जीवन का अन्त ही एक यथार्थ सत्य है। एक प्रामाणिक सत्य। कमरे के छत पर लगे पंखे की गति धीरे-धीरे कम होने लगी। फूला जी के विचार भी धीरे-धीरे शान्त होने लगे। उसे लगा कि उसे अब सब रोगों से मुक्ति मिल गई। उसे अब रोगों से निवारण मिल गया। उस ने आँखे मूँद ली। इस के साथ ही कमरे की छत पर लगा पंखा भी रूक गया।

◆◆◆

इन्सान

निक्की बडे ध्यान से कागज़ के पन्ने पर बने हुए चित्र को देख रही थी। दिमाग पर ज़ोर देते हुए उस ने कहा "नहीं नहीं यह इन्सान का चित्र तो है नहीं। इस की तो दाड़ी है। यह मुसलमान सा लगता है। नहीं, यह इन्सान नहीं हो सकता है। अच्छा तो फिर इस चित्र को देख लो। इसे मैं ने सोच समझ कर बनाया है। सकीना ने और एक कागज़ का पन्ना निक्की को थमा दिया। नहीं नहीं, तनिक भी नही। इस के माथे पर टीका लगा हुआ है। यह (बट्टा) कश्मीरी पंडित है। अच्छा फिर तो इस चित्र को देखो। सकीना ने तीसरा कागज़ निक्की को थमा दिया। इस पर भी निक्की ने तनिक दृष्टि डाली और नीचे फेंक दिया। झट से एक तरफ मुड़कर सकीना से कहा। क्यों मुझे मूर्ख समझती हो। इस की दाड़ी भी है और सर पर पगड़ी भी बान्धे हुए है। यह सिख है। सकीना को उस की यह बात बहुत अटक गई। वह आग उगलने लगी। क्रोध से फिर एक कागज़ का पन्ना उठाया और निक्की के सामने रख दिया। अच्छा फिर यह लो और देखो। इस पर कोई आपत्ति व्यक्त नहीं करोगी। देखो इस सूटिड-बूटिड आदमी को। सकीना ने बडे धैर्य से कहा। कागज़ के पन्ने पर नज़र जमाए फिर एक बार निक्की ने उदार चित्त से उत्तर दिया। अरी, कहीं तुम मुझे पागल तो नही समझ बैठी हो। यह तो अंग्रेज़ है। इसे कैसे इन्सान कहा जा सकता है। यह सुन कर सकीना बहुत क्रोधित हुई और निक्की के सामने कागज़ के पन्ने को रख दिया। अच्छा फिर इसे देखो। यह तो वास्तव में इन्सान है। यह तुम्हें अवश्य ही पसन्द आयेगा।

निक्की ने जब पूर्ण रूप से उस नग्न आकृति के चित्र को देखा तो ठहाके की हंसी हंसने लगी। अरे तुम्हे लज्जा भी नहीं आती। यह कैसा नंगा चित्र बनाया है। यह फिर तुम ही तो नहीं हो? इस पर दोनों बहने ज़ोर-ज़ोर से हसने लगी।

ज़हूर साहब अपनी बेटियों का यह खेल आर्कषण से देख रहा था। वह अचम्भे में पड़ गया। उस की टाँगे और बाहें थर थराने लगी। उस की घबराहट यथोचित थी। शायद इस लिए कि यदि उस की बेटियों ने उस की ओर बुर्श को थमाया तो वह किस प्रकार का आकार इन्सान को देगा। सच ही तो ऐसे मे उस के लिए एक वहुत बड़ा चैलेंज था। ज़हूर साहब जैसे एक बहुत बडे चित्रकार के लिए यह कोई असाधारण बात नही थी। अपितु यह बात उस के लिए एक ललकार से कम न थी। वह आज के समाज तथा आज के विश्व में वे सारे यथार्थ तथा जीवन के चिन्ह तलाशने लगा, जिन के प्रयोग से ही वह एक इन्सान को यथोचित रूप दे सकता। उस के मन की परेशानियाँ बढ़ती गई। जो ज़हूर साहब मिन्टों और सैकन्डों मे किसी भी चित्र को बनाने की कल्पना करता अथवा वना लेता उसी चित्रकार को आज अपना दिमाग खाली-खाली दिखाई देने लगा। ज़हूर साहब के जीवन में ऐसा कोई भी क्षण नही बीता था जब उस का बुर्श रूक जाता और दिमाग़ किसी सोच में खोजाता। सोचने वाली बात तो यह थी कि यह चैलेन्ज उस की दो मासूम लडकियों ने उसे दिया था। वह इसी विचार धारा में लीन हो चुका था कि सहसा मुस्सरत के बुलावे की आवाज़ ने उस का ध्यान फेर दिया।

''क्यो जी, क्या आप आज कार्यालय नही जा रहे हो? दस तो कब के बज चुके हैं''। ज़हूर साहब की समस्या सुलझ गई। उस की इज़्ज़त बच्चो के सामने बच गई। उस ने 'उपरवाले' का धन्यवाद किया। नहीं तो बात कुछ और बन जाती। जाने वह इन्सान का कैसा चित्र बना देता।

वह जल्दी जल्दी नीचे चला गया। बैग हाथ मे उठा लिया। गाडी में बैठ कर अपने कार्यालय चला गया। पर कुछ ही समय पूर्व गुज़रा हुआ वह दृश्य उस के दिमाग़ से नही जाता था। वह फिर से अपने सोचो पर ज़ोर देने लगा। अपने आप से ही विमर्श करने लगा। उसे अपने बचपन की ऐसी एक बात याद आई।

सम्भवतः वह उस समय छह-सात वर्ष का हुआ था और शायद स्कूल भी नहीं गया था। वह अपनी आयु के बच्चों के साथ दोपहर के समय नहर पर नहाने जाता था। एक दिन शायद जल्दी में था। स्नान कर के जब किनारे पर आया तो जल्दी जल्दी कोई उस के कपड़े लगा कर घर की ओर चल पडा। ज्यों ही बाज़ार से चला तो एक दुकानदार ने उसे रोक कर क्रोध में आकर कहा। क्या तुम्हें शर्म भी नही आती है? किसी कश्मीरी पंडित के कपडे पहने हुए है। सीना तान के चल रहे हो। ''दरिद्र कहीं का'' वहीं उस के जीवन का पहला क्षण था जब उस ने पहली बार बट्टा (कश्मीरी पंड़ित) का शब्द सुना था। उसे लगा जैसे उस ने कोई अपराध किया हुआ हो। वह दुबारा मुढ़ कर नहर की तरफ लौटा परन्तु वहां उस के कपड़े नही थे। शायद किसी बच्चे ने लगाए हुए थे। ज़हूर साहब इसी 'तीन-तरह' के बीच उलझे हुए थे कि उस की गाड़ी नियंत्रण के बाहर हुई और फुट पाथ से टकराई। एक वृद्ध महिला इस टक्कर से सड़क के एक तरफ धड़ाम से मुंह के बल गिर गई। ज़हूर साहब उसे झट से गाड़ी में बिठा कर सीधे अस्पताल ले गया। अस्पताल के पंजीकरण कवांटर पर जब ज़हूर साहब से बुढ़िया का नाम और अता-पता पूछा गया तो वह भौचक्का सा रह गया। पर साथ ही उसे मन मे विचार आया कि यदि वह उन्हें वास्तविक घटना की बात कहेगा तो उस सूरत में वे इस का इलाज नही करेंगे। पुलिस केस बना कर बेचारी बूढी बिना उपचार के मर जायेगी। बुढ़िया का जीवन बचाने के लिए उन्हें ने यह झूट कहा कि यह मेरी माँ

है। फिर अपना ही अता-पता लिखवाया/बुढिया को ''चीर फार्ड कक्ष'' (Operation Theatre) में लिया गया। परन्तु इस के साथ ही उसे ख़ून देने का 'आग्रह पत्र' (Demand Slip) भी मिला। ज़हूर साहब परेशान हुआ क्योंकि उसे वह ब्लॅड ग्रुप (Blood Group) नहीं था जो बुढिया को दिया जाता। वह फिर परेशान हुआ। उस ने अस्पताल वालों से बहुत विनय प्रणय किया कि यदि कहीं से भी इस ग्रुप का ख़ून मिले वह रूपये देने के लिए तैयार है। परन्तु अस्पताल के नियमों के अनुसार वैसा करना उचित नहीं था। वे ख़ून केवल बदले में देते थे। ज़हूर साहब परेशानी के आलम में अस्पताल के वरन्डा पर इधर उधर चक्कर काटता रहा। उस के पास इतना समय भी नहीं था कि किसी को ख़ून देने के लिए बुला लेता। उस की वेकरारी और परेशानी बढती गई। अंत मे वह इतना लाचार और विवश हुआ कि उसे कोई भी उपाय नज़र नही आया। वह कांवटर के निकट एक कुर्सी पर बैठ गया। अपने दोनो हाथ उपर उठाकर ख़ुदा से आजिज़ी करने लगा। वो इसी हालत मे था कि दूर एक वेच पर बैटा एक कमज़ोर आदमी उस के पास दौड़ते-दौड़ते आ गया।

''जनाब आप क्यो परेशान दिखाई दे रहे हैं।'' उस आदमी ने ज़हूर साहब से पूछा। ज़हूर साहब ने उसे सारी गथा सुनाई। उस व्यक्ति ने कोई उत्तर नही दिया पर सीधे कावंटर पर चला पर गया। वहाँ स्वागत कक्ष के अधिकारी से कुछ बातें की। एक छोटा सा फार्म भर दिया और सीधे साथ वाले कमरे के अन्दर चला गया। करीब आधे घन्टे के बाद वह फिर बाहर आ कर ज़हूर साहब के पास आया। ज़हूर साहव आँखे बन्द किए जैसे माला जप रहा था। ऐसा प्रतीत हो रहा था कि बूढी माँ के लिए प्रभु से प्रार्थना करता था। उस व्यक्ति ने ज़हूर साहब के कान्धे पर हाथ रख कर कहा। ''आप चिन्ता मत कीजिए आप का रोगी ठीक ठाक है।'' ज़हूर साहब के चहरे पर एक लालिमा सी उभर कर आई पर ख़ून किस ने दिया? ज़हूर साहब ने उसे

चकित होकर पूछा। उस विषय में आप तनिक भी चिन्ता मत कीजिये। आप केवल अन्दर कमरे में आइये। यह कह कर वह आदमी वहां से निकल कर उसी बैंच पर बैठ गया। ज़हूर साहब एक दम खडा हुआ। तेज़ तेज़ कदमों से अन्दर बूढी माँ के बैड़ के पास पहुँचा। बुढ़िया डाक्टरों के साथ बातें कर रही थी। ज़हूर साहब को विश्वास ही नही हो पा रहा था। उस के मुख पर फिर अपना ज़हूर वापस लौट कर उसी बैंच के पास आ पहुँचा, जहां वह आदमी बैठा हुआ था। परन्तु बैंच खाली था। उस ने लॉबी के चारों ओर उसे ढूँढनें का भरसक प्रयत्न किया पर वह आदमी कहीं भी नज़र नही आया। वह मुख्य गेट की तरफ भी दौड़ता गया, पर वह शख़्स वही भी नज़र नही आया। अन्त में हताश हो कर उसी बैंच के पास वापस पहुँचा। दायें-वायें, आगे-पीछे, चारों ओर उसे खोजने में लग गया पर वह व्यक्ति कहीं नज़र नही आया। लाचारी और मायूसी की दशा में जव उस ने अपना सर उपर उठाया उस की नज़र बैन्च के पीछे दीवार पर चिपके एक इश्तहार (पोस्टर) पर पडी। उस पर लिखा था.....

.......उस का न कोई नाम है न कोई आकार

.......उसे हर कोई अपने अपने नाम से जानता है।

.......वह लोगों में रह कर भी लोगों के प्रति निस्वार्थ व्यवहार करते हैं।

.......वह संसार में रह कर भी दुनियादारों से अपरिचित है।

.......वह अपना जीवन लोगों की धरोहर जान कर सुरक्षित रखता है।

.......वह अपना शरीर अपनी अच्छी करणी के वस्त्रों से ढाँपता है।

.......वह..............।

ज़हूर साहब से एक अनायास चींख निकल पडी....इन्सान

◆◆◆

मक़सद

सूर्यास्त हुए बहुत समय बीत चुका था। लोग 'ईशा' की नमाज़ भी कब के पढ़ चुके थे। सब दरवाज़े और खिडकियाँ बन्द किए हुये अपने अपने घरों में जैसे मृतप्राय हो चुके थे। ज़ैना द्यद भी बडे कमरे के किसी कौने में दुबक चुकी थी। हसीना को गेज़ की तरह अन्दर कमरे में कारावास मिल चुका था। दरवाज़े को अन्दर से चुटकनी और बाहर से ताला मार दिया गया था। लगता था कि मरुस्थल में बैठी हुई थी। गत तीन महीनों से जैसे रतनपुरा का नक्शा ही बदल चुका था। विवशाता के कारण लोग दिन में जल्दी जल्दी अपने दैनिक काम काज के लिए जाते थे, पर रात को सारा गावँ कब्रिस्तान सा बन जाता था। बस कही कोई नही। जीवन का कोई आभास नही मिलता 'वन्दहामा' के भीषण प्रलय ने लोगो कें दिलो दिमाग पर इतना प्रभाव डाला था किजैसे वे जीवन जीना ही भूल चुके थे। रात में दिया जलाना जैसे भूल ही चुके थे। कुछ तो 'आज्ञा–पालन' का भय और कुछ प्रकाश में दिखाई देने का डर। तमसान्धकार ने जीवन को तोड के रखा था। रतनपुरा जैसे प्राचीन काल का कोई गावँ बन चुका था। रतनपुरा ही नहीं अपितु सारे कश्मीर की त्रासदी ऐसी ही थी। अब कहां लोगों का रात गए तक इधर उधर घूमना चान्दनी रातों में महिलाओं का देर तक नृत्य मुद्राओं में व्यस्त रहना और 'रोफ़' गीत गाना, नाचना, खेलना, कहा सुनी करना, पुरुषों का दिन भर घोर परिश्रम करके शाम को कबड्डी खेलना, मंडली/बैठक जमाना, रात भर गाने बजाने और लोक नाच की महफिलें सजाना। सारा कंछ अब सपना लगता था। सम्भवत: जीवन की परिभाषा भी बदल चुकी

थी और अभिप्राय भी।

ज़ैना द्यद सच ही तो कहा करती थी हि "हमारे कश्मीर को किसी को नज़र लग गई है। सब कुछ बदल गया। देखो ना, यदि कभी कभी छोटा चूज़ा कभी किसी गाड़ी के नीचे आजाता था। तो सारा गांव एकत्र होजाता, अब तो कितने ही जवान सड़कों पर शहीद ही जाते हैं। उन का कही अता पता ही नही मिलता। कुत्ते तक पास नही आते।" ज़ैना द्यद का भी इस मे क्या दोष था। वह स्वयं एक क्रूर विडम्बना का शिकार हो चुकी थी। उस का एक–एक विलाप उस के भयानक अनुभवों का साक्षी था। वह जीवन से ऊब चुकी थी। इसी कारण हर बात पर कहा करती थी,–हे खुदा! किस कश्मीर की यह दुर्गत हुई।

पर रीशी साहब उस की इस बात से सहमत नही थे। उन्हें विशवास था कि "कश्मीर कौम के साथ छल हुआ है और वर्तमान हालात भी उसी कपट का परिणाम है।" हमें इन परिस्थितियों का पूरा–पूरा लाभ उठाना है और अपने भाग्य का स्वयं निर्णय करना हैं। इस के लिए हमें निर्णय कितने ही बलिदान क्यों न देने पडे। हम अवश्य ही देगे।

पता नहीं अब कौन सा बलिदान देना बाकी रह गया है। ज़ैना द्यद उसे बडे ही गैरत के साथ उस से यह बात पूछती। इस दम्पति में परस्पर इसी बात पर तू–तू मैं–मैं हुआ करती थी। पर अंत में ज़ैना द्यद हार मान जाती थी। यह कहते हट जाती कि ''तुम से कौन बहस करें। तुम तो लकीर के फ़क़ीर ही हो।''

ज़ैना द्यद रीशी साहब के साथ कहाँ मुकाबला कर सकती थी। वह तो एक राजनीतिक वातावरण में पोषित हुआ था। उस के पिता शेख साहब[1] की पार्टी के एक माननीय सदस्य रह चुके थे। उस की नस–नस में राजनीति भरी हुई थी। इस लिए उस के तर्क के सामन ज़ैना द्यद निरुत्तर हो जाती थी। फिर अंत में अपनी बात

1- शेख साहब – शेख मुहम्मद अब्दुला, शेरि–कशमीर, भूतपूर्व मुख्य मंत्री।

से पीछे हट जाती और यही कहते कहते किचन की ओर चली जाती कि ''कशमीर को किसी शैतान की नज़र लग गई। जाने क्या होने वाला हैं कौन सी विपदा आने वाली है। हे अल्लाह!, हमारे पापों का निवारण करना।'' रीशी साहब का मानना था कि "यदि बलिदान न दिया जाये तो हम कैसे अपना अभिप्राय प्राप्त कर सकेंगें।"

रेशी साहब के अभिप्राय की रूप रेखा क्या थी, वह वही जानते थे, परन्तु ज़ैना द्यद के जीवन का मक़सद उसी समय समाप्त हो चुका था जब उस का लाडला, अत्यंत प्रिय और इकलौता बेटा गुलाम हसन अकस्मान उस की नज़रों से दूर हुआ। जैसं "नोशलब" से "अजब मालिक" हुआ था। उस दिन सायम् उसे अपने हाथों से खाना खिलाया था और सर पर हाथ फेरते–फेरते उसे अपने पास एक तरफ सुलाया था पर जब प्रातः उस ने आखें खोली तो गुलाम हसन कहीं नहीं था। चारों ओर उसे ढूँढा, पर उस का अता–पता न मिला। तमाम पडोयिसों, संबंधियों मित्रों और परिचितों से गुलाम हसन के बारे में पूछा पर गुलाम हसन का कोई ठिकाना नहीं मिला। इतना दुःख गुलाम हसन के लापता होने का नहीं था जितनी पीड़ा लोक निन्दा से हुआ करती थी। इस से उन का मन भी व्यथित हो चुका था। कुछ लोग कहा करते थे कि वह 'पार' चला गया होगा और कुछ लोग कहा करते थे कि वह कहीं अकाल मृत्यु का शिकार बन गया होगा। जितने मुँह उतनी बातें। इस घटना को अब तक करीब डेढ़ वर्ष हो चुका था पर ज़ैना द्यद के सामने जैसे कल की बात थी। गुलाम हसन तब कुछ दिनों से खोया खोया सा रहता था। घर आने के लिये भी उसे समय नहीं मिलता था। कभी चार बजे के बाद ही और कभी रात गये। न जाने कालेज़ जाता भी था। ....

संभवतः ज़ैना द्यद का अनुमान सही था। वह उसे अपने बाप से दूर रखने का प्रयत्न किया करती थी। पर कहाँ तक वह उसके पीछे घूमती फिरती या पीछा करती। बाहर कुछ और ही

हवा चल रही थी। आखिर ऐसा ही हुआ जिस का उसे अनुमान था। ज़ैना द्यद को बेटे के विरह ने भीतर ही भीतर खोखला कर दिया था। जब भी वह उस के विषय में सोचने लगती उस का टूटा हुआ मन और अधिक उदास होजाता। वह बावली सी हो जाती। वह अपने पति से भिड़ जाती। उस के अनुमान के अनुसार रीशी साहब ही इस घटना के ज़िम्मेदार थे, अतः वह बात बात पर उसे ताने दिया करती थी। पर रीशी साहब उसे एक अपरिचित और बुद्धिहीन महिला समझता था। वह क्रोध में आकर उसे कहता था। "ये वातें तुम्हारी समझ से बाहर है। जाओ, अपने किचन को सम्भालो। तुम्हें क्या ख़बर ज़माना कहां से कहां पहुँच गया।"

वास्तव में ज़माना बदल चुका था। जो लोग घास के तिनकों से डरते थे वे अब कांगड़ी के बदले फिरन के अन्दर से क्लाशन कोफ लिये फिरते हैं। रीशी साहब न केवल रतन पुरा में अपितु सारे इलाके में परिचित व्यक्ति थे। वह "तहरीक" का न केवल शुभचिन्तक ही था अपितु "तहरीक" का एक मुख्य कार्यकर्ता तथा पथ प्रदर्शक भी था। कहा जाता है कि वह मुजाहिदों को तैयार करने में भी पेश-पेश था। इसीलिये वह गत दो-तीन महीनों से प्रातः घरसे निकलता था और रात गए वापस लौटता था। कभी रात घर से बाहर ही गुज़र जाती और कभी दो-दो, तीन-तीन दिन भी घर नही लौटता था। आज भी वह बहुत सवेरे घर से निकला था पर अभी तक कही नहीं दिखाई दिया। वस्तुतः ज़ैना द्यद के लिए यह रोज़ की बात थी पर आज तो वह भी घबरा चुकी थी। जब से यह बात फैल गई कि गावँ के चौराहे पर किसी अज्ञात व्यक्ति का शव पड़ा है, वह सिमट के रह गई। वह ऊपर की मंज़िल से नीचे भी नहीं चली आई और सायम् काल होते ही वह खिडकियाँ-दरवाज़े बन्द कर के उल्लू को तरह अन्धेरे कमरे में बैठी हुई थी। बारबार वह उठ खडी होती और अन्दर वाले कमरे में जाकर हसीना से दरवाज़े की दरार से कुछ काना फूसी करती थीं ज़ैना द्यद को एक ही

चिन्ता अन्दर ही अन्दर खाये जा रही थी कि वह कब हसीना को घर से विदा करेंगे, हालंकि हसीना की आयु अभी अधिक नहीं थी। वह ज़्यादा से ज़्यादा मोलह वर्ष की हुई होगी पर बदली हुई परिस्थितियों के कारण ज़ैना द्यद उस के विवाह के लिए विवश हो चुकी थी। वे रीशी साहब के पीछे निरंतर लगी हुई थी कि जितनी जल्दी हो सके हसीना का रिश्ता कहीं तय किया जाये। परन्तु उस के वहुत ही व्यस्त होने के कारण इतनी उतावली हो चुकी थी कि वह राह चलतों को हसीना के विवाह का वास्ता देती थी। उसे इस वात का एहसास था कि यह काम उसे स्वयं निबाहना है, इसीलिए मध्यस्थ को भी संदेशा स्वय ही भेजा था।

आंगन के दरवाज़े पर ज्यों ही खटखटाने की आवाज़ सुनाई दी, तुरन्त ज़ैना द्यद के कान खडे हुए। दिल की धड़कने एक दम तेज़ होने लगी। वह ऊपर की मंज़िल पर चली गई और छिपे-छिपे खिड़की से देखने लगी। उसे कोई छाया सी नज़र आई। वह यह न जान सकी कि यह कौन हो सकता है। फिर जब दरवाज़े को सांकल की आवाज़ तीन बार हुई तो ज़ैना द्यद जान गई के यह रीशी साहब ही हो सकते है। वह तुरन्त नीचे चली आई। धीरे धीरे उस ने निचली बैठक का दरवाज़ा खोला और आहिस्ता-अहिस्ता आगंन में पहुँच कर मुाव्य दरवाज़े की बारीक दरार से नज़र गढ़ाई तो वह सकते में आ गई। उस ने रीशी साहब के साथ दो वरदी पोश देख कर अवाक् रह गई वह फटी आखों से अजगर की तरह थम सी गई। रीशी साहब ने भाँप लिया कि ज़ैना द्यद का सन्देह यथोचित हैं उस ने सरगोशी में कहा, "दरवाज़ा खोलिए, ये अपने ही लोग है।"

ज़ैना द्यद ने धीरे धीरे सांकल खोली और फिर दरवाज़ा खोला। रीशी साहब जल्दी जल्दी अन्दर आये और पत्नी के कान में कुछ बात कही। उस ने एक लम्बी सांस ली। रीशी साहब फिर दरवाज़े के बाहर आये और इन दोनों को अपने साथ अन्दर ले आये। सारे एक-दम अन्दर आये। फिर छोटे-बडे सब दरवाज़े

बन्द किए। रीशी साहब और उसके अतिथि निचले वाले कमरे में अन्धेरे मे ही नीचे बैठ गएं। ज़ैना द्यद किचन की ओर चली गई और अतिथियों के आतिथ्य सत्कार का प्रबन्ध करने लगी। रीशी साहब ने दो लोई महमानों की ओर बडा दी। वे तकिया लगा कर दीवार के साथ बैठ गए। अस्त्र-शस्त्र एक ओर रख दिये और पाँव पसार कर सुस्ताने लगे। रीशी साहब नक चिलम भरवाई और उन की ओर हुक्का थमाया। एक आदमी ने ज़ेब से एक लिफाफा निकाला। उस में से कुछ पिसी हुई पदार्थ चिलम में डाली और हुक्के से एक लम्बा कश लिया।

रीशी साहब किचन की ओर गये और पत्नी से कुछ बातें करने लगे।

"अरी, क्या तुम ने छोटा मुर्गा कटवाया"? उस ने पत्नी से कहा।

ज़ैना द्यदः बडी मुशिकल से वहाब काक के सुल्ले को पकड़ा। पहले तो माना नही उस ने। आज तो लोगों की आखों में पानी नही रहा। काफी मिन्नत उठानी पड़ी।

रीशी साहबः क्या अब खाना तैयार नही है?

ज़ैनाद्यदः सब कुछ तैयार है। खाद्य पदार्थ गर्म करेंगें।

रीशी साहबः अच्छा तनिक देखलेना, हसीना ठीक तरह से है? कहां है वह?

ज़ैनाद्यदः ओह! तो तुम्हें हसीना याद आ ही गई। देखो ना, हालात दिन प्रति दिन खराब होते जा रहे है। कृपा करके अब उस का भी कुछ प्रबन्ध करो ना? कहती हूँ, मैं उस दिन की प्रतीक्षा में हूँ जब वह सही सलामत अपने सुसराल जायेगी।

रीशी साहबः तुम इस की परवाह मत करो। इन्शाह अल्लाह सब कुछ ठीक हो जाएगा। क्यो मुझे उस की चिन्ता नहीं है? यदि मालिक ने चाहा तो उस का विवाह आज़ाद वातावरण में किया जायेगा। अब ज़्यादा समय लगने वाला नही है। अभी तो वह कल ही की बच्ची है।

ज़ैनाद्यदः बच्ची तो है पर हालात को देखकर सहम सी जाती हूँ। आज भी सैनिक दिन भर गाँव की गश्त लगा रहे थे।

रीशी साहबः (विस्मित होकर) क्या? कुछ विशोष?

ज़ैनाद्यदः कहते है किसी की लाश चौराहे पर थी।

रीशी साहबः किस को?

ज़ैनाद्यदः मुझे क्या ख़बर। सुल्ला कहता था कि किसी ने शिकायत की है कि यहां 'काख' (आतंकवादी) आते जाते हैं।

रीशी साहबः ओह। निछावर हो सैनिक इनपर। उन्होंने अपनी चाल बदल डाली है। उन्हें आज्ञा मिली है कि वे सैनिकों की वेश-भूषा में घूमा करें जिस से शुत्र को धोखा लगे।

ज़ैनाद्यदः हाँ, जब मै ने तुम्हारे साथ इन वरदी पोश लोगों को देखातो मेरे नीचे की ज़मीन सरक गई। ऐसा लगा कि कहीं दुर्भाग्य वश से शामत फ़ौजी तो नहीं आये।

रीशी साहबः अब समझ आया, इन को बुद्धि कितनी तीव्र है।

ज़ैनाद्यदः अच्छा, यह बताओ, आज इतनी देर क्यों हुई। मैं बहुत चिन्तित थी।

रीशी साहबः वास्तव में काका पोरा मे क्रेक डाउन (crack down) चल रहा था। वहां करोब दो धंटे फंसे रहे। हम तब तक दूर खलियान में ही छिपे रहे, जब तक न फ़ौजी वहां से चल पडे।

ज़ैनाद्यदः अच्छा बिछा दो दस्तरख्वान। मैं खाना लाऊंगी। और हाँ हसीना को भी बुला लाओ।

रीशी साहब अन्दर वाले कमरे की ओर लौटे चले और हसीना के कमरे के दरवाज़े को खट खटाने लगा। उस ने दरवाज़ा खोला देखते ही अपने पिता के गले लगी। रीशी साहब ने माथे को चूमा और हाथ पकड़ कर अपने साथ बाहर लाया। उसे किचन के पास छोडा और स्वयं उसी कमरे में चला गया।

काख़ (आतंकवादी) बहुत प्रसन्न चित थे। शायद चिलम का नशा उन के रोम रोम में फैल चुका था। चेहरे लाल-लाल से हो गये थे। इसी बीच हसीना दस्तरख्वान लेकर अन्दर आई और

अतिथियों के सामने पसार दिया। रीशी साहब ने तशनारी लाई और उन्होंने हाथ धोये। ज़ैनाद्यद ने खाना लाया और उसे दस्तरख्वान पर सजाया। रीशी साहब ने उन का परिचय अतिथियों के साथ करवाया और इस प्रकार उन्होंने खाना आरम्भ किया। ज़ैनाद्यद ने खिडकियों की सब दरारों पर कागज़ लगाया था। ताकि थोडा सा प्रकाश भी बाहर न जा सके। फिर भी उस ने लालटेन को ज़रा पीछे ही रख दिया। "हसीना" एक तरफ कोने मे लालटेन के पास बैठीं। रीशी साहब और ज़ैनाद्यद आतिथ्य सत्कार में लगें रहे।

काख (आतंकवादी) मुर्गे को एक-एक टांग दांतों के नीचे दवाये जा रहे थे और एक कोने में बैठी हसीना की ओर निरंतर नज़रे जमाये हुए थे। शायद उन्हें लगता था कि "हसीना" को भी दांतों के नीचे चबाया जा सकता है। उसी समय मस्जिद से गूजँती हुई आवाज़ आई। उथल पुथल सी मच गई। साथ ही मस्जिद के लाउड़स्पीकर से सह घोषणा भी हुई कि गावँ के सारे पुरुष तथा महिलायें परिचय परेड (Identification parade) के लिए तुरन्त बाहर आये और स्कूल के मैदान में एकत्रित हो जाये। यदि आधे घंटे के अन्दर अन्दर तमाम लोग अपने घरों से निकल कर स्कूल के मैदान में एकत्र नहीं होते तो हम घर-घर तलाशी अभियान आरम्भ कर देगें। रीशी साहब और उस की पत्नी थर थर काँपँ उठे। उन्होंने सोचा के आज जान की खैर नही। आज सारा रहस्य खुल जायेंगा। "काखों" के साथ साथ फ़ौजी हमारे सारे सदस्यों को ले जायेगे और हमारी हड्डी पसली तोड कर बन्धक बनादेंगे। रीशी साहब को तुरन्त एक तदबीर सूझी। उसने अपनी पत्नी से कहा कि वह "हसीना" और मुजाहिदों को भाँडागार में छिपा लेंगे। दरवाज़े के बहार घास का बड़ा भण्डार उठा के रख देंगे ताकि किसी को सन्देह न होने पाये। एक दम उन्होंने इस सुझाव पर अमल किया और इन तीनों को वहाँ अन्दर बन्द करके घर से बाहर चले गए। बाहर से दरवाज़ों को

ताला मार दिया गया।

स्कूल के मैदान में सब गांव वाले एकत्रित हो चुके थे। पहचान जारी थी। करीब़ चार आदमी जो सब गाँव वालों से भली भाँति परिचित थे, सैनिकों के इस काम में सहायता करते थे। रीशी साहब और उस की पत्नी भी धीरे धीरे एक कतार में बैठ गए। सैनिक और उन के मुख़्बिर एक एक आदमी के पास जाते थे और उनकी पहचान पक्की करवाते थे। जब रीशी साहब की बारी आई तो एक मुख्बिर ने एक सैनिक के कान में कुछ कहा। फ़ौजी ने रीशी साहब के उपर डंडा मारा और पूछा, "तुम्हारी बेटी कहाँ है?" रीशी साहब भी कुछ कच्ची गोलियाँ खाने वाला नहीं था, उसने तुरन्त जवाब दिया कि वह कल ही नानिहाल चली गई। हमारे घर में ताला है। क्या सैनिक इस बात से संतुष्ट हुआ कि नहीं पर मुख़्बिर ने रीशी साहब पर एक तिरछी नज़र दौड़ाई।

परिचय परेड क़रीब-करीब़ तीन घंटे चलती रही। इस बीच कुछ सैनिक घर-घर भी गए। इस में क्या उन्हें कुछ मिला या प्राप्त हुआ वह किसी को भी मालूम नहीं। लोग पशुओं की तरह एक दूसरे की ओर घूर घूर कर देख रहे थे जैसे मुँह पर ताले लगे हुए थे। हाँ, जिस पर डंडा पडता था उस के मुँह से अनायास चीख निकल आती। अन्त में यह घोषणा की गई कि परिचय-परेड समाप्त हुई। सब लोग अपने-अपने घरों में चले जाये। अदि कहीं यह प्रमाण मिला कि किसी ने भी किसी आतंकवादी को अपने घर में शरण दी है तो वह घर ही नष्ट किया जायेगा। बारूद से उडा देंगे।

लोगों को भीषण संकट से छुटकारा मिला और अपने-अपने घरों की ओर चल दिये। बराबर उसी प्रकार जिस प्रकार पशुओं का कोई झुंड खुला छोड़ दिया जाता है। कुछ लोग दौड़ते भागते घरों की ओर चलते बने और कुछ धीरे-धीरे। रीशी साहब और उस की पत्नी ने संकट-मुक्त होकर दो चार सांसे लीं। हम्द पढ़ा

कि ख़ुदा ने पर्दा रखा, नहीं तो ज़लील होजाते। वे तेज़ तेज़ कदमों से घर की ओर जाने लगे जैसे कोई पीछे पीछे दौड़ रहा था। जब वे आंगन के दरवाज़े पर पहुँच गए,तो अकस्मात् स्तब्ध हो उठे। क़दम रुक से गए। वे लज्जित होकर सतंभित रह गये। बाहर का द्वार खुला था और अन्दर का दरवाज़ा भी। वे दो-दो कदम तेज़-तेज़ दौडते गये, भाँडागार की ओर। वहां भी दरवाज़ा खुला देखा। कमरे को ख़ूब छान मारा। वहां न "काख" थे और न "हसीना"। वे मकान के सब कमरों में पागलों की तरह ढँढने लगे पर कहीं कोई नज़र न आया। ज़ैनाद्यद किचन में चली गई और लालटेन को तलाशा। रीशी साहब ने जेब से माचस निकाली और लालटेन जलाया। वहां सारी वस्तुएँ बिखरी पड़ी थी। इन्हें आभास हुआ कि शायद "हसीना" को "काखों" ने ग़ायब कर दिया है। ज़ैनाद्यद से रहा न गया। वह मकान के सब से उपर वाली मंज़िल पर चढ़ गई।

विक्षिप्तावस्था में इधर उधर "हसीना" को खोजती रही और अकस्मात् हाथ से लालटेन नीचे गिरा और मुँह से ज़ोरदार चीख निकल पड़ी। हसीना! यह कौन सा वज्र गिर पडा मुझ पर। पिछली खिड़की के पास हसीना का अर्द्ध-नग्न शरीर दराज़ पड़ा था। उस की बाँहें और टांगें बन्धी हुई थीं और जीभ मुँह से बाहर निकल आई थी।

"AANDHI SHARAD KI"

A Collection of Kashmiri short stories
by Dr. Roop Krishen Bhat
Hindi Translation by Piarey Hatash